अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-21, 16-30 जून 2019

जिसे आप पार्लियामेण्टों की माता कहते हैं, इंग्लैंड की वह पार्लियामेण्ट तो बाँझ और वेश्या है। ये दोनों शब्द बहुत कड़े हैं, तो भी उसपर अच्छी तरह लागू होते हैं। मैंने उसे बाँझ कहा, क्योंकि अब तक उस पार्लियामेण्ट ने अपने-आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। अगर उस पर जोरी - दबाव डालने वाला कोई न हो तो वह कुछ भी न करे, ऐसी उसकी कुदरती हालत है। और वह वेश्या है, क्योंकि जो मंत्रिमंडल उसे रखे उसके पास वह रहती है। आज उसका मालिक एस्क्विथ है, तो कल बालफर होगा और परसों कोई तीसरा। मैं तो भगवान से यही मांगता हूं कि हिन्दुस्तान की ऐसी हालत कभी न हो। - 'हिन्द स्वराज' में गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 21, 16-30 जून 2019

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
प्रो. सोमनाथ रोडे अरविन्द अंजुम,
रमेश ओझा अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. चुनाव परिणाम और चुनौतियां... 3
3. अतीत के असंतोषों का संघर्ष... 4
4. लोकतंत्र एक व्यवस्था ही नहीं,... 5
5. चुनाव आयोग भी मानता है ईवीएम... 6
6. गांधीजी से विमुख होता भारत... 7
7. दस कारण जो गांधी को अपरिहार्य... 9
8. एही ठैयाँ झुलनी हेरानी हो रामा... 10
9. धारावाहिक : उपन्यास - बा... 12
10. की जानो बापू?... 14
11. गांधी का राष्ट्रवाद... 15
12. देशकाल... 17
13. लोक-विमर्श... 18
14. गतिविधियां एवं समाचार... 19
15. कविता... 20

संपादकीय

स्वराज्य को लोक स्तर तक ले जाने की चुनौतियां

स्वराज्य को लोक स्तर तक पहुंचाना है तथा लोक स्तर की बुनियादी इकाई गांव है, यह चिन्तन हमारे सार्वजनिक विमर्श में कहीं पीछे छूट गया है। सच्चे लोकतंत्र की ओर बढ़ने के बजाय हम इसकी विपरीत दिशा में बढ़ रहे हैं। प्रतिनिधि पर लोक का नियंत्रण हो यह भी अब विमर्श के बाहर हो गया है। यदि हम लोक के स्तर तक स्वराज्य को ले जाने की बात सोचते तो यह भी सोचते कि प्राकृतिक संसाधनों व स्रोतों पर लोक का नियंत्रण कैसे हो। किन्तु आज के प्रमुख विमर्श में यह मान लिया गया है कि संसाधन और स्रोत वैश्विक पूंजीवादी बाजार के अन्तर्गत आ जायेंगे। और यदि संसाधनों और स्रोतों को बाजार के अधीन आना है तो ऐसी राजसत्ता लानी होगी जो इस व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करे। आज दुनिया भर में चुनाव इसी प्रकार की राजसत्ता लाने का माध्यम बन गये हैं।

इसलिए लोक के लिए संघर्ष का मुद्दा यह नहीं है कि चुनाव के माध्यम से इस पार्टी की सरकार आती है या उस पार्टी की। बल्कि प्रमुख मुद्दा यह है कि स्वराज्य की बेदखली की जो प्रक्रिया चल रही है, उसके खिलाफ लोक आंदोलन कैसे खड़े किये जायें। लोक स्तर पर स्वराज्य की बेदखली का पहला तत्त्व यह है कि लोकजीवन से नैतिकता को अलग कर दिया जाय। क्योंकि नैतिकता का स्रोत अंतरात्मा की शक्ति होती है। जैसे-जैसे नैतिकता का ह्रास होता है, वैसे-वैसे अंतरात्मा के बल का योगदान सार्वजनिक या सामुदायिक जीवन में घटता जाता है। सत्याग्रह की शक्ति का निर्माण अपरिहार्य रूप से आत्मबल के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। राजसत्ता एवं पूंजीसत्ता की हिंसा के विरुद्ध जिस बल की जरूरत है, उसका अधिष्ठान आत्मबल में ही होगा।

लोक स्तर पर स्वराज्य की बेदखली का दूसरा तत्त्व यह है कि राजसत्ता, विकास के नाम पर लोकसत्ता के सभी आयामों को कमजोर करती जा रही है। इसका मूल कारण यह है कि 'विकास' की केन्द्रीयता से भौतिक रचना को व्यापक स्वरूप प्रदान करते जाना है; जबकि स्वराज्य में केन्द्रीयता संबंधों व आत्मतुष्टि में है। इस झूठे विकास ने हमें संबंधों की गहराई तथा आत्मा की ऊंचाई से दूर धकेल दिया है।

लोक की अस्मिता एक स्वाभाविक अस्मिता है जो कि 'स्व' की अस्मिता के विस्तार में प्रकट होती है। जबकि दूसरी अन्य अस्मिताएं कृत्रिम अस्मिताएं हैं। राजसत्ता, जो स्वयं एक कृत्रिम संस्था है, अपने टिके रहने तथा अपना औचित्य सिद्ध करने के लिए, कृत्रिम अस्मिताओं को बढ़ाती व उनका पोषण करती हैं। और अंततः इन कृत्रिम अस्मिताओं के बल पर लोक की सत्ता का अपहरण कर लेती है।

लोक स्तर से स्वराज्य की बेदखली का एक अन्य तत्व यह है कि पूंजीवाद के विकास में पूंजी का केन्द्रीकरण हुआ एवं श्रम संसाधनों से बेदखल हो गया। जबकि लोक स्तर पर स्वराज्य को स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि पूंजी को लोक के नियंत्रण में लाया जाये तथा लोक स्वराज्य का निर्माण श्रम करने वाले समूहों की प्रतिष्ठा पर हो। इसका मतलब यह हुआ कि श्रम की प्रतिष्ठा इस बात से जुड़ी है कि श्रम करने वाले समूहों के नियंत्रण में संसाधनों और पूंजी को लाने की व्यवस्था का निर्माण हो। और इस बुनियाद पर लोक के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो।

एक अन्य बड़ी चुनौती सूचना तंत्र द्वारा झूठ एवं मूल्यहीनता का प्रचार है। एक ऐसी मानसिकता का निर्माण किया जा रहा है जिसमें सूचनाएं भी केवल मन के रंजन का माध्यम बनें। सत्य एवं जीवन मूल्य का कोई स्थाई या दीर्घजीवी स्वरूप हो सकता है यह बात लोक मानस से बेदखल की जा रही है। और यदि सत्य एवं जीवन मूल्य स्वयं में क्षणिक या क्षण-स्थाई हैं, तो उनके आधार पर लोक स्वराज्य की स्थापना भी व्यावहारिक विचार नहीं होगा। 'विकास' एवं 'मूल्य' के द्वंद्व में पूंजीवादी विकास की स्वीकृति तथा सत्य एवं मूल्य आधारित समाज रचना के प्रति उपेक्षा भाव के निर्माण में इस सूचना तंत्र ने बड़ी भूमिका निभाई है।

आज सर्वोदय एवं संपूर्ण क्रांति की जमात के लोगों की यह विशेष जिम्मेदारी है कि वे स्वराज्य को लोक स्तर तक ले जाने के संघर्ष को तेज करें और उसके लिए सामाजिक आधार का निर्माण व विस्तार करें। **–बिमल कुमार**

चुनाव परिणाम और चुनौतियां

❑ अरविन्द अंजुम

यदि आप मुझसे यह अपेक्षा करते हैं कि मैं मनुष्यों का संहार करूं तो आपको पहले किसी युक्ति से मेरी मानवीय संपूर्णता को नष्ट करना होगा ताकि मेरी इच्छा मर जाए, मेरे विचार सुन्न पड़ जाएं, मेरी गतियां स्वचालित हो जाएं।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर, पृ.42, राष्ट्रवाद

17वीं लोकसभा का चुनाव परिणाम एक ऐसे ही समाज के निर्माण के मैकेनिज्म को विकसित एवं निर्णायक बनाने के सफल प्रयास के रूप में देखा जायेगा, जिसकी ओर आज से 100 वर्ष से भी पहले रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उपरोक्त वाक्य में संकेत किया है। आबादी के एक हिस्से को संज्ञाशून्य, विवेकहीन, मदांध ही नहीं भयातुर, आशंकाशील व मशीनीकृत इकाइयों में बदल डालने का उद्यम किया गया है। पूरा चुनाव एक ऐसे नैरेटिव—कथानक के इर्द-गिर्द मंडराता रहा है जिसमें भारत की हिन्दू बहुल आबादी की पराजय भावना को जागृत कर बदले की भावना में तब्दील किया गया। ऐसा ही हुआ था प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी में हिटलर के उदय के दौरान। उसने जर्मनी की जनता की पराजय भावना को न केवल उकसाया और उत्तेजित किया बल्कि उनके दिमाग में आर्य नस्ल की सर्वश्रेष्ठता का तत्त्व डालकर अंध राष्ट्रवाद का एक ऐसा खतरनाक मिश्रण बनाया, जिसने जर्मनी की गैर यहूदी आर्य नस्ल को मदहोश बना डाला जिसका अंतिम परिणाम जर्मनी एवं खुद हिटलर के दयनीय पतन में प्रकट हुआ।

2019 के चुनाव में आरएसएस, भाजपा एवं इसकी अनुषंगिक इकाइयों ने इसी प्रतिगामी कथानक को दुहराया है। यह कोशिश लगातार जारी है जबकि जर्मनी की पराजय तो कम से कम वास्तविक थी। भारत में राजाओं के बीच युद्ध होते रहे हैं और उनके बीच, उनके सैनिकों के बीच जय-पराजय तय होती रही है। प्रजा इन युद्धों से एक प्रकार से बेगानी ही रहती थी। पर, आज राजा की जाति या नस्ल की पराजय बताकर जन-मन में एक कुंठा का निर्माण किया जा रहा है। और स्वाभाविक है कि पराजय की यह कुंठा किसी जातीय, नस्लीय या फिर राष्ट्रीय जीत से ही तृप्त हो सकती है। इसीलिए इस चुनाव का सबसे प्रभावी नारा या सूत्र था—घर में घुसकर मारूंगा। बालाकोट में कथित एयर स्ट्राइक इस नारे की पुख्ता पृष्ठभूमि बनी। वैसे यह नारा सिर्फ पाकिस्तान के खिलाफ ही नहीं है, बल्कि दुश्मनों के खिलाफ एक ऐक्शन प्रोग्राम है। और दुश्मन तो मुसलमान, अल्पसंख्यक और सबसे अव्वल जो इस कथानक पर सवाल करते हैं, दावों पर संदेह जताते हैं, वे सभी हैं।

इस ऐक्शन प्रोग्राम का ठोस उदाहरण है—भोपाल से मालेगांव ब्लास्ट की आरोपी प्रज्ञा ठाकुर (साध्वी विशेषण जान-बूझकर छोड़ा गया है) को भाजपा का प्रत्याशी बनाया जाना। प्रज्ञा ठाकुर का चुनाव स्थापित प्रतीकों को ध्वस्त करने और नये प्रतीकों को गढ़ने एवं स्थापित करने के अभियान के रूप में देखा जा सकता है। चाहे वह हेमंत करकरे पर टिप्पणी हो या नाथूराम गोडसे को देशभक्त बताना—दोनों ही इसी रणनीति का हिस्सा है।

यहां यह ध्यान दिलाना जरूरी है कि नाथूराम गोडसे, जो कि एक दुर्दांत हत्यारा था, उसे देशभक्त बताने का अर्थ है—गांधी की हत्या को उचित ठहराना और गांधी को कमतर साबित करना। संघ/भाजपा की प्रतिक्रियावादी एवं संकीर्ण विचारधारा के सामने गांधी एक यक्ष प्रश्न एवं बुनियादी चुनौती के रूप में तने हुए हैं इसलिए गांधी हत्या (शारीरिक ही नहीं वैचारिक भी) इनकी फौरी और दीर्घकालिक जरूरत है। ये बार-बार इसका प्रयास करेंगे। इस या ऐसे बयानों से गांधी के हिमायती उद्विग्न हो उठते हैं और यह बहुत स्वाभाविक भी है। हमें समझ लेना चाहिए कि विचारधारा का यह संघर्ष गांधी बनाम गोडसे का संघर्ष नहीं है। गांधी को गोडसे या गोडसेवादियों से चुनौती नहीं है, वे चुनौती दे ही नहीं सकते, उनमें यह सामर्थ्य ही नहीं है और यह अच्छा भी है। इसलिए गांधी की रक्षा की हमारी व्यग्रता निरर्थक है। गांधी को हमारे जैसे रक्षकों की जरूरत नहीं है। गांधी आज भी न केवल खुद की हिफाजत करने में सक्षम हैं बल्कि हमारे जैसों की हिफाजत भी कर रहे हैं। गांधी रक्षा-कवच हैं, जिसे भेदना कठिन है।

समकालीन चुनौतियों से आज हमारा सीधा मुकाबला है। सवाल यह है कि इस मुकाबले में हम कहां ठहर रहे हैं। वास्तव में आज जो चुनौतियां हैं, वह हमारी पीढ़ी की चुनौतियां हैं, गांधी की नहीं। गांधी ने अपने जमाने में तत्कालीन सवालों का प्रभावी तरीके से सामना किया। हमें भी अपने तरीकों से एक कुंठित कथानक से समाज को गाफिल होने से बचाना है। धर्म, संस्कृति, परंपरा और राष्ट्र की वर्चस्ववादी धारणा के घालमेल को निरस्त कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर मानवीय व संवेदनशील समाज निर्माण की दिशा में प्रवृत्त होना है।

बहुमत या बहुसंख्यक का वर्चस्व लोकतंत्र का निषेध है। लोकतंत्र बहुमत की ऐसी व्यवस्था है जिसे अल्पमत के हितों की रक्षा के लिए सदैव तत्पर एवं जिम्मेवार होना चाहिए। बहुमत का वर्चस्व स्थापित करने के प्रयास समाज व देश को तानाशाही के अंधे कुएं में धकेल देते हैं। इसलिए जनतांत्रिक व्यवस्था के बुनियादी उसूलों, जनतांत्रिक संस्थाओं की स्वायत्ता एवं अंततः जनतांत्रिक संस्कृति का निर्माण हमारी समकालीन चुनौतियां हैं। यह चुनौती तब और गहराती है जब एक मदहोश और प्रचंड बहुमत की सरकार हो और जो विश्वगुरु की सांस्कृतिक सर्वश्रेष्ठता के विचार से सरोबार हो। ❑

83% लोकसभा सांसद करोड़पति, 33% पर आपराधिक केस दर्ज : एडीआर

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (एडीआर) की एक रिपोर्ट के मुताबिक पिछली लोकसभा के 521 सांसदों में से 430 सांसद (83%) करोड़पति थे। इनमें 227 बीजेपी, 37 कांग्रेस और 29 एआईएडीएमके के सांसद शामिल थे। वहीं, रिपोर्ट के मुताबिक, करीब 33% सांसदों पर आपराधिक मामले दर्ज हैं जिनमें से 14 सांसदों पर हत्या के प्रयास का केस था। देखने की बात होगी कि नयी लोकसभा में इन आंकड़ों में कितनी बढ़ोत्तरी होती है।

आम चुनाव-2019

अतीत के असंतोषों का संघर्ष

❑ रवीश कुमार

भारत जैसे देश में ईमानदार और नैतिक होने का सामाजिक और संस्थागत ढांचा नहीं है. यहां ईमानदार होने की लड़ाई अब अकेले की और हारने की होती है. सत्ता और कॉरपोरेट की पूंजी से लड़ने की ताकत सिर्फ गांधी में थी. गांधी के बाद यह लड़ाई लड़ने की जिम्मेदारी पत्रकारों की थी, लेकिन जब यह समझ में आया कि पत्रकारिता सत्ता और कारपोरेट की बगलगीर हो गयी है, तब लगा कि हम जैसों की चुनौती बढ़ गयी है।

मैंने सांप्रदायिकता के खिलाफ़ पत्रकारों के बीच आकर बोला. आज भी बोलूंगा कि आपके भीतर धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह बैठ गया है. आप मशीन बनते जा रहे हैं. यह धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह से लैस सांप्रदायिकता आपको एक दिन मानव बम में बदल देगी. पत्रकारिता संस्थानों में संचित अनैतिक बलों के कारण पत्रकारिता समाप्त हो चुकी है. मेरा विरोध पत्रकारिता के पेशे से नहीं, उसके भीतर आयी इस गिरावट से है।

बहरहाल, 23 मई 2019 को आई आंधी गुज़र चुकी है लेकिन हवा अभी भी तेज़ चल रही है. 2014 के बाद से इस देश के अतीत और भविष्य को समझने का संदर्भ बिन्दु (रेफरेंस प्वाइंट) बदल गया है. चुनाव से पहले ही प्रधानमंत्री नए भारत की बात करने लगे थे. वह नया भारत उनकी सोच का भारत था. ऐतिहासिक कारणों से जनता के बीच कई नये संदर्भ बिन्दु पनप रहे थे. दशकों तक उसने इसे अपने असंतोष के रूप में देखा. बहुत बाद में वह अपने इस अदल-बदल के असंतोष से उकता गई. उसने उस विचार को थाम लिया जहां अतीत की अनैतिकताओं पर सवाल पड़े हुए थे. जनता 'अतीत के असंतोषों की स्मृतियों' से उबर नहीं पाई और इस बार असंतोष की उन्हीं स्मृतियों को विचारधारा के नाम पर प्रकट कर आई जिसे नया भारत कहा जा रहा है.

बेशक सत्ता के पक्ष में अनैतिक शक्तियों और संसाधनों का विपुल भंडार है. मगर जनता उसे 'अतीत के असंतोष की स्मृतियों' के गुण-दोष की तरह देखती है, बर्दाश्त कर लेती है. जनता को पता है कि विपक्ष में भी वही अनैतिक शक्तियां हैं जो सत्ता पक्ष में है. विपक्ष को लगा कि जनता दो समान अनैतिक शक्तियों में से उसे ही चुन लेगी. इसलिए उसने भी बची-खुची अनैतिक शक्तियों का ही सहारा लिया. वर्तमान सत्ता ने उन अनैतिक शक्तियों को भी कमज़ोर और खोखला कर दिया. विपक्ष के नेता सत्ता पक्ष की तरफ भागने लगे. विपक्ष मानव और आर्थिक संसाधन से ख़ाली होने लगा. दोनों का आधार अनैतिक शक्तियां ही थीं. इस परिस्थिति ने विपक्ष के लिए नया अवसर उपलब्ध कराया था कि वह चुनाव की चिन्ता छोड़ अपने राजनीतिक और वैचारिक पुनर्जीवन को प्राप्त करे, लेकिन उसने नहीं किया.

विपक्ष को अतीत के असंतोष के कारणों के लिए माफी मांगनी चाहिए थी. नया भरोसा देना चाहिए था कि अब से ऐसा नहीं होगा. इस बात को जनता के बीच ले जाने के लिए तेज़ धूप में पैदल चलना चाहिए था. उसने यह भी नहीं किया. 2014 के बाद चार साल तक कोई जनता के बीच जनता की तरह नहीं गया. 2019 आया तो बची-खुची अनैतिक शक्तियों के समीकरण से विपक्ष एक विशालकाय अनैतिक शक्तिपुंज से टकराने की ख्वाहिश पाल बैठा. विपक्ष को समझना था कि अलग-अलग दलों की राजनीतिक प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी है. क्षेत्रीय दलों के ज़रिए लोकतंत्र में जो सामाजिक संतुलन आया था उसकी आज कोई भूमिका नहीं रही.

बेशक इन दलों ने समाज के पिछड़े और वंचित तबकों को सत्ता-चक्र घुमाकर शीर्ष पर लाने का ऐतिहासिक काम किया लेकिन इसी क्रम में वे दूसरे पिछड़ों और वंचितों को भूल गए. इन दलों में उनका प्रतिनिधित्व उसी तरह बेमानी हो गया जिस तरह अन्य दलों में होता है. अब इन दलों की प्रासंगिकता नहीं बची है तो इन्हें भंग करने का साहस भी होना चाहिए. अपनी पुरानी महत्वकांक्षाओं को भंग कर देना चाहिए. भारत की जनता अब नए विचार और नए दल का स्वागत करेगी।

बहुजन राजनीति ने कभी जाति के खिलाफ़ राजनीतिक अभियान नहीं चलाया. संघ ने भी जातियों के संयोजन की राजनीति खड़ी कर दी. बेशक क्षेत्रीय दलों ने बाद में विकास की भी राजनीति की और कुछ काम भी किया लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर वे अपनी भूमिका को हाईवे बनाने तक ही सीमित कर पाये. वह प्रदेश की राजनीति तो कर लेते हैं मगर देश की राजनीति नहीं कर पाते हैं.

बहुजन के रूप में उभर कर आए दल अपनी विचारधारा की किताब फेंक चुके हैं. उनके पास अंबेडकर जैसे सबसे तार्किक व्यक्ति हैं, लेकिन वे भी अब उनके लिए प्रतीक और अहंकार का कारण बन गए हैं. छोटे-छोटे गुट चलाने का कारण बन गए हैं. दलित राजनीति के नाम पर अब संगठनों को राष्ट्रीय अध्यक्ष ही मिलते हैं, राजनीति नहीं मिलती है. बहुजन राजनीति एक दुकान बन गई है। इसमें नेता अपनी जाति की दुकान लेकर एक दल से दूसरे दल में आवागमन करता है. जो अंबेडकर को लेकर प्रतिबद्ध हैं, उनकी भी हालत गांधी को लेकर प्रतिबद्ध रहने वाले गांधीवादियों की तरह है. दोनों हाशिये पर जीने के लिए अभिशप्त हैं. विकल्प गठजोड़ नहीं है. विकल्प विलय है. पुनर्जीवन है. और यह अगले चुनाव के लिए नहीं है, भारत के वैकल्पिक भविष्य के लिए है.

कांग्रेस नेहरू का बचाव नहीं कर सकी. वह पटेल और बोस का भी बचाव नहीं कर सकी. आज़ादी की लड़ाई की विविधता और खूबसूरती से जुड़ी 'अतीत की स्मृतियों' को जिंदा नहीं कर पाई. गांधी के विचारों को खड़ा नहीं कर पाई. मैं इसी एक पैमाने से कांग्रेस को ढहते हुए देख रहा हूं. राजनीति विचारधारा की ज़मीन पर खड़ी होती है, नेता की संभावना पर नहीं. एक ही रास्ता बचा है. भारत के अलग अलग राजनीतिक दलों में बचे वैचारिक लोगों को अपना अपना दल छोड़ कर किसी एक दल में आना चाहिए. जहां विचारों का पुनर्जन्म हो, नैतिक बल का सृजन हो और मानव संसाधन का हस्तांतरण हो. ❑

लोकतंत्र एक व्यवस्था ही नहीं, संस्कृति भी है!

❑ कृष्ण कुमार यादव

देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू इलाहाबाद में कुम्भ मेले में घूम रहे थे। उनके चारों तरफ लोग जय-जयकारे लगाते चल रहे थे। गाँधी जी के राजनैतिक उत्तराधिकारी एवं विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र के मुखिया को देखने हेतु भीड़ उमड़ पड़ी थी। अचानक एक बूढ़ी औरत भीड़ को तेजी से चीरती हुई नेहरू के समक्ष आ खड़ी हुई और बोली-''नेहरू! तू कहता है देश आजाद हो गया है, क्योंकि तू बड़ी-बड़ी गाड़ियों के काफिले में चलने लगा है। पर मैं कैसे मानूं कि देश आजाद हो गया है? मेरा बेटा अंग्रेजों के समय में भी बेरोजगार था और आज भी है, फिर आजादी का फायदा क्या? मैं कैसे मानूं कि आजादी के बाद हमारा शासन स्थापित हो गया है। नेहरू अपने चिरपरिचित अंदाज में मुस्कुराये और बोले- माता! आज तुम अपने देश के मुखिया को बीच रास्ते में रोककर तू कहकर बुला रही हो, क्या यह इस बात का परिचायक नहीं है कि देश आजाद हो गया है एवं जनता का शासन स्थापित हो गया है!

लोकतंत्र की यही विडंबना है कि हम नेहरू अर्थात लोकतंत्र के पहरुए एवं बूढ़ी औरत अर्थात जनता दोनों में से किसी को भी गलत नहीं कह सकते। दोनों ही अपनी जगहों पर सही हैं, अन्तर मात्र दृष्टिकोण का है। गरीब व भूखे व्यक्ति के लिए लोकतंत्र का वजूद रोटी के एक टुकड़े में छुपा हुआ है तो अमीर व्यक्ति के लिए लोकतंत्र का वजूद चुनावों में अपनी सीट सुनिश्चित करने और अंततः मंत्री या किसी अन्य प्रतिष्ठित संस्था की चेयरमैनशिप पाने में है। यह एक सच्चाई है कि दोनों ही अपने वजूद को पाने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। भूखा और बेरोजगार व्यक्ति रोटी न पाने पर चोरी की राह पकड़ सकता है या समाज के दुश्मनों की सोहबत में आकर आतंकवादी भी बन सकता है। इसी प्रकार अमीर व्यक्ति धन-बल और भुज-बल का प्रयोग करके चुनावों में अपनी जीत सुनिश्चित कर सकता है। यह दोनों ही लोकतंत्र के दो विपरीत लेकिन कटु सत्य हैं। परन्तु इन दोनों कटु सत्यों के बीच लोकतंत्र कहाँ है, संभवतः एक राजनीतिशास्त्री या समाजशास्त्री भी इस सवाल का जवाब देने में खुद को अक्षम पायेगा।

लोकतंत्र विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय शासन प्रणाली है। लोकतंत्र का अर्थ किसी देश के सामान्य जन की सत्ता के नीति निर्धारण में भागीदारी है। मतदान के माध्यम से इस भागीदारी को मूर्त रूप देना होता है। विडम्बना ही है कि देश में जब शिक्षा का प्रतिशत 30 से 35 प्रतिशत था तब 45 से 68 फीसदी वोट पड़ते थे। आज शिक्षा का प्रतिशत 60 से 80 प्रतिशत है तब भी मतदान 65 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होता। शिक्षा के विकास के साथ जागरूकता और राजनीतिक चेतना का जो विकास होना चाहिए था, वह नहीं हुआ।

लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता सम्प्रभुता का जनता के हाथों में होना है। जनता ही चुनावों द्वारा तय करती है कि किन लोगों को अपने ऊपर शासन करने का अधिकार देना है। कुछ देशों ने तो इसी आधार पर जनता को अपने प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का भी अधिकार दे रखा है। यह एक अलग तथ्य है कि आज राजनीतिक दल ही यह निर्धारित करते हैं कि जनता का प्रतिनिधित्व करने की जिम्मेदारी किसे सौंपी जाय। लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व की इस अजूबी व्यवस्था के कारण ही नाजीवादी हिटलर एवं मुसोलिनी ने इसे भेड़तंत्र कहा। उनका मानना था कि लोकतंत्र वास्तविक रूप में एक छुपी हुई तानाशाही है, जिसमें कुछ व्यक्ति विशेष जन संप्रभुता की आड़ में यह सुनिश्चित करते हैं कि जनता को किस दिशा में जाना है न कि जनता यह निर्धारित करती है कि उसे किस ओर जाना है।

आज लोकतंत्र मात्र एक शासन-प्रणाली नहीं वरन् वैचारिक स्वतंत्रता का पर्याय है। चाहे वह संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवाधिकार घोषणा पत्र हो अथवा भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूलाधिकार हों, ये सभी राज्य के विरुद्ध व्यक्ति की गरिमा की स्वतंत्रता सुनिश्चित करते हैं।

वस्तुतः लोकतंत्र मात्र चुनावों द्वारा स्थापित राजनीतिक प्रणाली तक ही सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक लोकतंत्र, आर्थिक लोकतंत्र जैसे इसके कई रूप हैं। इसी के चलते सामाजिक न्याय एवं समाजवादी समाज की अवधारणाओं ने जन्म लिया। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो यहाँ पर लम्बे समय से छुआछूत की भावना रही है-स्त्रियों को पुरूषों की तुलना में कमजोर समझा गया है, कुछ जातियों को नीची निगाहों से देखा जाता है, धर्म के आधार पर बँटवारे रहे हैं। यह लोकंतत्र की भावना के विपरीत है। लोकतंत्र एक वर्ग विशेष की नहीं, वरन् सभी की प्रगति की बात करता है। तराजू के दो पलड़ों की भांति जब तक सभी के बीच बराबरी नहीं कायम की जाती, तब तक लोकतंत्र के वास्तविक मर्म को नहीं समझा जा सकता।

लोकतंत्र एक व्यवस्था ही नहीं, एक संस्कृति भी है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में वास्तविक लोकतांत्रिक सत्ताएं तभी सृजित हो पाती हैं, जब समाज लोकतांत्रिक हो। जनजीवन में लोकमत और मत-विवेक विकसित हो। लोकतंत्र एक संरचना है, जो सार्थक व सहिष्णु प्रतिवाद व साझा संवाद से निर्मित होती है। नव्यतम तकनीक से निर्मित आज के विकसित संचार-तत्र के दौर में अगर हम लोकतंत्र में आचार और विचार की संस्कृति विकसित नहीं कर सकते तो लोकतंत्र का स्तर गिरेगा। दुनिया में जिन देशों में लोकतंत्र दो सौ या पाँच सौ साल से जीवित है, उसका कारण भी यही है कि वहां लोकतंत्र हर स्तर पर आचार-विचार की संस्कृति बन चुका है। लोकतंत्र में व्यवस्था बड़ी और व्यक्ति छोटा होता है, इस बात को गंभीरता से समझना होगा। हर व्यवस्था के सकारात्मक एवम् नकारात्मक पक्ष होते हैं, सो लोकतंत्र के भी हैं। वस्तुतः 21वीं शताब्दी में लोकतंत्र सिर्फ एक राजनैतिक नियम या शासन की विधि मात्र नहीं है बल्कि यह समाज के उस ढांचे की खोज करने का एक प्रयत्न है, जिसमें स्वतंत्र व स्वैच्छिक मूल्यों द्वारा संचालित समाज हो और समाज की विविधता में एकता व एकता में विविधता के प्रयोग चलते रह सकें। ❑

चुनाव आयोग भी मानता है ईवीएम को स्वतंत्र मतदान में बाधा

❑ अनुराग मोदी

चुनाव के दौरान मेनका गांधी ने अपने संसदीय चुनाव क्षेत्र में पहले मुस्लिम और फिर सर्व-सामान्य मतदाताओं को यह ताकीद करते हुए एक मार्के की बात की कि उन्हें जहाँ से जितने वोट मिलेंगे, उसी के अनुसार काम होगा। चुनाव आयोग द्वारा इस टिप्पणी पर 48 घंटों के लिए मेनका को चुनाव प्रचार से रोकने का दंड भी दिया गया, लेकिन इससे बड़ा सवाल यह खड़ा हुआ कि क्या संविधान-प्रदत्त 'गुप्त मतदान' मात्र एक छलावा है?

मेनका गांधी द्वारा अनजाने में उजागर की गई 'गुप्त' के बजाय 'घोषित' मतदान की इस बात को चुनाव आयोग भी मानता है। उसने 2008 में ही ईवीएम से मतों के बूथवार परिणाम के तरीके को स्वतंत्र व निर्भीक मतदान में बड़ी बाधा बताया था। यह बात 'लॉ कमीशन' ने मार्च 2015 में 'चुनाव सुधार' पर केंद्र सरकार को सौंपी अपनी रपट में भी रेखांकित की थी। उन्होंने लिखा था कि '21/11/2008 को चुनाव आयोग ने सचिव, कानून एवं विधि मंत्रालय को पत्र लिखकर यह मांग की थी कि चुनाव में ईवीएम के मतों की गिनती 'टोटेलाइजर' से की जा सके, इसके लिए चुनाव नियमों में जरुरी बदलाव किए जाएं।' 'टोटेलाइजर' 14-14 ईवीएम मशीनों को जोड़कर की जाने वाली गणना की पद्धति होती है। यह रिपोर्ट आगे कहती है - 'चुनाव आयोग के इस सुझाव के पीछे सबसे बड़ा तर्क यह था कि वोटों की गिनती के वर्तमान तरीके में हर बूथ के अनुसार परिणाम मालूम पड़ते हैं, जिसके चलते उस क्षेत्र के मतदाता के उत्पीड़न, धमकी और चुनाव के बाद प्रताड़ना की संभावना रहती है।' इसका मतलब साफ है, जब तक ईवीएम से वोटों की गिनती का तरीका नहीं बदला जाता, तब तक स्वतंत्र मतदान सुनिश्चित नहीं हो सकता।

गरीब और वंचित वर्ग का मतदाता यह सच्चाई न सिर्फ जानता है, बल्कि वर्षों से उसकी कीमत भी चुकाता आ रहा है। किस समुदाय ने किस को वोट दिया, यह जानकारी सिर्फ उमीदवार तक ही सीमित नहीं रहती। चुनाव के बाद धर्म, जाति, समुदाय, क्षेत्र के अनुसार मतदाताओं के मतों की चीर-फाड़ कर दुनिया को बताने का एक बड़ा धंधा मीडिया में भी होता है, ताकि पता चल सके कि किसने किसे वोट दिया है। खासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जो एक तरफ, धर्म और जाति के नाम पर राजनीति करने वाले नेताओं और राजनीतिक पार्टियों को आड़े हाथों लेता है, दूसरी तरफ, वह खुद उसी काम को गला फाड़-फाड़ कर करता है। अपने नामी विशेषज्ञों के हवाले से मीडिया इस बात का विज्ञापन भी करता है कि उसका चुनाव परिणामों का आंकलन सटीक होगा। यानी कल तक जो जानकारी आमतौर पर राजनीतिक पार्टियों तक सीमित रहती थी, उसे मीडिया न सिर्फ आम लोगों के बीच लेकर जाता है, बल्कि उसके कारणों पर बहस करवाकर उसे और पुष्ट करता है।

जब हमारे देश में गुप्त मतदान है तो मेनका गांधी जैसे नेताओं को कैसे मालूम पड़ता है कि किस समुदाय, जाति और गाँव के लोगों ने किसको वोट दिया है? 'चुनाव आयोग' मतों की गिनती करते समय हर बूथ से जुडी ईवीएम मशीन से प्राप्त मतों की अंतिम संख्या को फॉर्म-20 में दर्ज करता है और फिर उसे जोड़कर पूरे चुनाव क्षेत्र में किस उम्मीदवार को कितने मत मिले, यह निकालता है। 'चुनाव आयोग' की वेबसाइट से किसी भी विधानसभा या लोकसभा के पिछले चुनावों के भी फॉर्म-20 को देखा जा सकता है। जब फॉर्म-20 में चुनाव परिणाम देखते हैं तो हर बूथ पर पड़े वोट का अंदाजा लगा लिया जाता है। यह भी समझ आ जाता है कि अमुक गाँव किस पार्टी के साथ था, किसके नहीं।

जब मतदान मतपत्रों के जरिए होता था, तो मतदाता को सुरक्षा प्रदान करने के लिए पूरे क्षेत्र के सभी बूथों की मतपेटियों के मतपत्रों को एक साथ मिलाकर उनकी गिनती की जाती थी। ईवीएम से मतदान की प्रक्रिया शुरू होने के बाद मतदाताओं के लिए इस तरह की कोई भी सुरक्षा नहीं बची है। ईवीएम में मतों की गिनती के संचालन के लिए वोटों की बूथवार गिनती कर उन्हें फॉर्म-20 में दर्ज किया जाता है। चुनाव के अपने लम्बे अनुभव के बाद, इस मुद्दे को लेकर हमने वर्ष 2013 में 'चुनाव आयोग' को ई-मेल के जरिए एक पत्र लिखा था। जबाव में आयोग ने बताया था कि इस मुद्दे पर वह पहले से ही काम कर रहा है। उन्होंने भारत सरकार को 14 ईवीएम के वोटों की एक साथ गिनती करने के लिए 'टोटेलाइजर' का उपयोग करने हेतु 'चुनाव संचालन अधिनियम' में जरूरी बदलाव के लिए लिखा था।

इन दिनों इसी मुद्दे पर दो जनहित याचिकाएं सुप्रीमकोर्ट में विचारार्थ लगी हैं। इन याचिकाओं की सुनवाई के दौरान 'चुनाव आयोग' की ओर से उसके वकील ने कहा था कि मत की गुप्तता, व्यक्ति की निजता और क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों के अधिकारों को खतरे में नहीं डालना चाहिए और ऐसी परिस्थिति को टालना चाहिए जहाँ लोगों ने किसे अपना वोट दिया है, इस आधार पर उनके साथ किसी भी तरह का भेदभाव एवं पूर्वाग्रह से ग्रसित व्यवहार हो। इसलिए 'टोटेलाइजर' से वोटों की गिनती करने के पहलुओं पर विचार करना होगा।' बाद में तब केंद्र सरकार ने 'टोटेलाइजर' के प्रस्ताव का विरोध किया। नवम्बर 2018 में सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में जल्द सुनवाई से इंकार कर दिया। इससे यह तो साफ है कि देश के 'चुनाव आयोग' और 'लॉ कमीशन' ने भी मान लिया है कि ईवीएम से वोटों की गिनती के वर्तमान तरीके में मतदाता की प्रताड़ना की आशंका है, उन्हें धमकी मिलती है और वे निर्भय, स्वतंत्र होकर वोट नहीं दे पाते। यह भी स्पष्ट है कि इसका सबसे बुरा असर दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक (मुस्लिम) मतदाताओं पर खासतौर पर होता है। यह न सिर्फ संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (क) में अपने विचार को बिना भय के, स्वतंत्रता पूर्वक व्यक्त करने के अधिकार का उल्लंघन है, बल्कि यह चुनाव आयोग को संविधान की धारा 324 में मिले स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के अधिकार एवं दायित्व का भी उल्लंघन है। जब 'चुनाव आयोग' भी यह मान चुका है कि ईवीएम से गिनती में मतदाता स्वतंत्र रूप से और बिना डरे मतदान नहीं कर पाते, तो फिर 'टोटेलाइजर' के उपयोग की अनुमति मिल जाने तक उसे ईवीएम से वोटिंग कराने की अपनी जिद पर पुनर्विचार करना चाहिए। *(सप्रेस)*

गांधी जी से विमुख होता भारत

❑ केशव शरण

भले हम अपने सार्वजनिक जीवन से संतुष्ट न हों। भले हम अपनी जीवन-व्यवस्था से हर स्तर पर असंतुष्ट हों। भले हम अपने लोकतंत्र को अपने सपनों और आकांक्षाओं के अनुरूप न पाते हों, भले हमारे देश की अर्थव्यवस्था हमारे नौजवानों को रोजगार देने में सक्षम न हो और नीचे से ऊपर सर्वत्र भ्रष्टाचार का आलम हो, भले हमारा सामाजिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो रहा हो और हमारी राष्ट्रीय एकता पर खतरे मंडरा रहे हों लेकिन हम अपनी जीवनशैली को छोड़ने के पक्ष में नहीं हैं। हमारी पूंजीवादी और बाजारोन्मुख आधुनिक सभ्यता हमें लगातार अनुकूलित करती हुई जिस उत्तर-आधुनिक दौर में ला चुकी है, वहां अब यह बताया जा रहा है कि इतिहास का अंत हो चुका है और विचारधारा दुनिया से विदा ले चुकी है। इसका मतलब अब कोई क्रांति नहीं हो सकती जो जनता को नवजीवन दे। हमारे अंदर यह विचार बैठाया जा चुका है कि हम जिस कारपोरेटीय जगत में जी रहे हैं उसका कोई विकल्प नहीं है। वह और उसका अर्थजगत सर्वशक्तिमान है और उसी के अधीन सभी सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक शक्तियां हैं। हमें इसी व्यवस्था के अंतर्गत अपना वर्तमान और भविष्य जीना है।इसी में हमारी वास्तविक सांसें हैं और आभासी सुख-सपने हैं। लाख हमारा समय झूठ, हिंसा, घृणा, अंधास्था, अनैतिकता, स्वार्थ, अर्थसंचय, घोर दरिद्रता और भोग-विलासिता का हो और हम इसे बदलना भी चाहते हों लेकिन पूंजीवाद से अनुकूलित हमारी जो जीवन-शैली है उसे हम छोड़ना भी नहीं चाहते। नहीं तो रास्ता तब भी था जब हम एक राष्ट्र के रूप में उभरे थे और अब भी है जब हमने एक राष्ट्र के रूप में सत्तर साल का सफ़र पूरा कर लिया है। गांधीवाद का यह रास्ता ही हमें वह सब दे सकता था और दे सकता है जिसके हम आकांक्षी थे और हैं, लेकिन गांधीवाद के रास्ते अंग्रेजों से राजनैतिक आजादी लेकर हम अनैतिक आजादी के हकदार हो गये। दूरदर्शी गांधी इस बात को जानते थे। इसलिए स्वतंत्रता संग्राम के उनके लक्ष्यों में सिर्फ देश की आजादी ही नहीं थी, एक नये नागरिक- मानव का निर्माण भी था जो सत्य और अहिंसा के आधार पर एक शोषण मुक्त देश और समाज की रचना करे।

गांधी ने कहा था—'सत्य मेरा भगवान है और अहिंसा उसे पाने का साधन।' लेकिन आज का सत्य क्या है? आज का सत्य है किसी भी तरह सत्ता प्राप्त करो। इसके लिए झूठे वादे भी करना हो तो करो। इसके लिए जनता को असंभव सपने भी दिखाना पड़े तो दिखाओ। इसके लिए समाज को बांटना भी हो तो बांटो। इसके लिए चुनावों में धांधली भी करनी पड़े तो करो।इसके लिए जो भी साम-दाम-दंड-भेद अपनाना हो, अपनाओ। इसके लिए भ्रष्ट तरीके से भ्रष्ट पूंजीपतियों से पैसे प्राप्त करना हो तो करो और जब सत्ता मिल जाये तो उनके भ्रष्ट और शोषणकारी आर्थिक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाओ। गांधी वर्तमान औद्योगिक सभ्यता को शैतानी सभ्यता कहते थे। आज यह शैतानी सभ्यता बेहद शक्तिसंपन्न हो चुकी है। सरकारों के निर्माण में इसकी भूमिका प्रच्छन्न होते हुए भी सर्वाधिक प्रबल हो चुकी है। आज इस शैतानी सभ्यता पर सरकार का नियंत्रण नहीं है, उल्टे इसका नियंत्रण सरकारों पर हो चुका है। सरकार का नियंत्रण केवल जनता पर है। आज इस शैतानी सभ्यता को सरकार के रूप में एक भारी दलाल मिल चुका है जिसके द्वारा वह प्राकृतिक संसाधनों का इस कदर जमकर दोहन कर रहे हैं कि पर्यावरण के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न हो गये हैं, प्रदूषण अपने चरम पर पहुंच गया है। जल, वायु, मिट्टी कुछ भी प्रदूषण से मुक्त नहीं है। नदियां सूख गयी हैं। कई नदियां विलुप्त हो चुकी हैं। जिनमें पानी है, उनमें जलजीव मर रहे हैं। वनों और पहाड़ों का विनाश मौसमों को असंतुलित कर रहा है। भारी संख्या में लोग प्रदूषण जनित बीमारियों से मर रहे हैं। कितने जीव-जंतु, पंछी हमेशा के लिए समाप्त हो गये हैं।पर्यावरणविदों की ओर से लगातार चेतावनियां दी जा रही हैं। लेकिन यह सर्वग्रासी शैतानी सभ्यता बिना किसी परवाह के परवान पर परवान चढ़ी जा रही है।

गांधी जी का जीवन प्रकृति से एकलय रहा है जिसकी अभिव्यक्ति उनके आश्रमों की व्यवस्था, जीवन निर्वाह, सफ़ाई , चिकित्सा आदि में दिखाई पड़ती है। हरी डाल काटने को क्या, वे तो फूल तोड़ने से भी सहमत नहीं थे। दक्षिण अफ्रीका में अपने टॉलस्टॉय फार्म में उन्होंने शौचालयों की व्यवस्था इस तरह की थी कि उनमें पानी का इस्तेमाल कम से कम हो। उनके शौचालयों की व्यवस्था ऐसी थी कि शौच को मिट्टी से ढककर बाद में उसकी खाद बनायी जाती थी। आज गांव-गांव, घर-घर सरकार की प्रेरणा और सहायता से शौचालय बनाए जा रहे हैं। बिना इस पर विचार किए कि इस तरह के शौचालयों में कितना पानी लगता है और गांवों में पानी का कितना अभाव है। इस मामले में गांधी जी की पद्धति तो यह होती कि ग्राम समाज की भूमि पर सामुदायिक शौचालय बनते और शौच का उपयोग खाद बनाने में होता। इस तरह कुछ तो रसायनिक खाद का प्रयोग कम होता जो भूमि प्रदूषण का एक बड़ा कारण है। इसके कारण खाद्यान्न में पोषकता और रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम हो रही है। घर-घर शौचालय सरकार का एक लोकप्रिय कार्यक्रम है। अब वह इसकी

वाहवाही लूटे कि और बातें भी देखे। वास्तव में जनता भी इस दिशा में सचेत नहीं है क्योंकि वह गांधी को पढ़ती नहीं है, पूजा भले कर लेती हो।

गांधी ने कहा था—'सत्य और प्रेम के मार्ग की ही विजय हमेशा होती है। तानाशाह और हत्यारे कुछ समय के लिए अजेय लग सकते हैं लेकिन अंत में उनका पतन होता है।' इसे गांधी ने इतिहास से जाना था और अच्छी तरह से अनुभूत किया था। साम्राज्यवाद से लड़ने का हौसला उन्हें अपने इसी ज्ञान से आया था। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के सम्मान की लड़ाई लड़कर और जीतकर उन्होंने सिद्ध भी कर दिया और प्रिटोरिया सरकार को चमत्कृत भी। यह लड़ाई उन्होंने सत्य और अहिंसा के बूते जीती। अपने समय में उन्होंने रूस के जार और हिटलर के अंजाम को भी देखा। अत्यंत अमानुषिकता के साथ लाखों का नरसंहार कराने वाले अनेक देशों को विश्व युद्ध में झोंकने वाले हिटलर ने जिस कायरता से आत्महत्या की, उसे दुनिया जानती है। गांधी हिंसा की व्यर्थता को समझते थे। वे बंदूक के बल पर क्रांति को भी मानवता के पक्ष में नहीं मानते थे। वे जानते थे कि बन्दूक के बल से प्राप्त क्रांतिकारी व्यवस्था कभी स्थाई नहीं हो सकती। यह एक दमनकारी व्यवस्था होगी जो सशस्त्र प्रतिक्रांतियों की श्रृंखला को जन्म देगी। वे तो आजादी के बाद सेना के भी पक्ष में नहीं थे। लेकिन आजादी पाने के बाद कौन उनकी सुनता था। धार्मिक आधार पर देश के दो टुकड़े हुए और एक सेना बंटकर दो हो गयी। जनता की शिक्षा-दीक्षा और मानवीय विकास गौण हो गया। रक्षा पर भारी बजट के साथ परमाणु बम तक आ गये। लोहिया ने एक समय कहा था कि गांधी और परमाणु बम में से हमें किसी एक को चुनना होगा। लोहिया का जोर गांधी को चुनने पर था लेकिन परमाणु बम गांधी पर भारी पड़ा। आज तो सिर्फ सेना है और परमाणु बम है। परमाणु बम की बदौलत देश को शक्तिशाली बताया जा रहा है। गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, असमानता के कारण यह देश कितना कमजोर और खोखला हो गया है, इस पर परदा डाला जा रहा है। देशभक्ति की भावना को भुनाकर सत्ता प्राप्त करने के लिए आज सेना एक साधन के रूप में इस्तेमाल की जा रही है। इसके विरुद्ध बोलने वालों को देशद्रोही तक कहा जा रहा है। गांधी जी के विचारों को छोड़कर हम कहां से कहां आ गए हैं।

गांधी ने कहा था—'हिंदू धर्म की विशिष्टता, जैसा मैंने उसे समझा है, यह है कि उसने सभी धर्मों की उत्तम बातों को आत्मसात कर लिया है।' लेकिन गांधी जी के इस कथन को भुलाकर हिंदू धर्म को कट्टर और इकहरा बनाया जा रहा है और बताया जा रहा है कि यह धर्म इसी तरह बचेगा। देशभक्ति की भावनाओं की तरह धार्मिक भावनाओं का भी दोहन पतनशील राजनीतिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है। इसकी आड़ में जनतंत्र और जनता के प्रश्नों को नजरअंदाज किया जा रहा है। मंदिर-मस्जिद की जनविरोधी राजनीति हो रही है।

गांधी ने कहा था—'विविधता और बहुलता भारत की आत्मा है। यह संभव नहीं है कि वह अपनी आत्मा को खोकर जीवित रह सके।' लेकिन हम देख रहे हैं कि इस विविधता और बहुलता को विघटनकारी बताकर भारत की आत्मा का विघटन किया जा रहा है। गांधी आज नहीं हैं। गांधी के पुराने समर्पित और प्रतिबद्ध अनुयायी भी अब नहीं हैं। अब एक बिल्कुल नई पीढ़ी है, पाश्चात्य सभ्यता में डूबी हुई, जिसे न सिर्फ गांधी की शिक्षाओं से दूर रखा जा रहा है बल्कि उन्हें बरगलाकर गांधी के विरुद्ध खड़ा किया जा रहा है। प्रतीकों और नये पाठों के माध्यम से गढ़ी जा रही यह नई तस्वीर आत्मघाती सिद्ध होगी। अद्भुत बात यह है कि आज भी विदेशों में गांधी ही भारत की पहचान हैं और वैश्विक समस्याओं के निराकरण के सिलसिले में दुनिया उन्हीं की ओर देख रही है। लेकिन अपना भारत उनसे विमुख होता जा रहा है। ❑

पत्र

सर्वोदय जगत (16-30 अप्रैल 2019) के पृष्ठ 16 पर प्रकाशित 'गांधीजी के हेल्थ सीक्रेट्स' शीर्षक आलेख में 'कुछ ऐसी थी उनकी डाइट' उपशीर्षक में लिखा है कि गांधीजी की डाइट में उबला अंडा भी शामिल था। क्या यह हकीकत है कि गांधीजी उबले अंडे का सेवन करते थे? हम तो आजतक उनको पक्का शाकाहारी ही मानते रहे हैं। कृपया स्पष्ट करें कि गांधीजी उबला अंडा खाते थे या नहीं, ताकि हम उनके बारे में अपनी धारणा को ठीक कर सकें। उक्त आलेख के लेखक राहुल आनंद ने यह जानकारी कहां से ली है? अगर यह गलती से छप गया है तो कृपया अगले अंक में भूल सुधार कर लें। इस बारे में तथ्यात्मक जानकारी हमारे लिए बहुत जरूरी है। **–कृष्ण कुमार**

उत्तर

सर्वोदय जगत में प्रकाशित उक्त आलेख में दी गयी जानकारी पर आपके मन में उपजी शंका के समाधान के लिए आपकी त्वरित प्रतिक्रिया हेतु कोटिशः आभार! उसी आलेख में इस बात का भी जिक्र है कि गांधीजी के हेल्थ सीक्रेट्स से संबंधित ऐतिहासिक महत्त्व की एक फाइल राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय के पास उपलब्ध है। उस फाइल में मौजूद दस्तावेजों से पता चलता है कि आरंभिक दौर में गांधीजी की डाइट में उबला अंडा भी शामिल था, जिसे उन्होंने बाद में त्याज्य माना। गांधीजी के जीवन में ऐसे दूसरे उदाहरण भी मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि कभी उन्होंने मांसाहार भी किया, कभी बचपन में बीड़ी भी पी ली, तो कभी पिता की जेब से पैसे भी चुराये और यह सब खुद लिखकर सबको बताया। उनकी जीवनचर्या प्रयोगधर्मी थी, और इन प्रयोगों के जरिये वे सत्य के निकट पहुंचने के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। गांधीजी की कही हुई एक बात आपके ध्यान में होगी कि अगर किसी विषय में मेरे दो मत मिलें, तो उसे सही मानें जो बाद में कहा गया है। उनके आरंभिक दिनों में कभी उबला अंडा भी उनकी डाइट में शामिल था, इस बात की पुष्टि राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, नई दिल्ली से भी की जा सकती है। **–सं.**

गांधी - 150

दस कारण जो गांधी को अपरिहार्य बनाते हैं

❑ रामचन्द्र गुहा

रामचंद्र गुहा की गिनती समकालीन भारत के सबसे प्रखर एवं बहुप्रतिभाशाली इतिहासकारों में होती है. उन्होंने इतिहास, पर्यावरण और क्रिकेट जैसे विविध विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं लिखी हैं. पद्मभूषण और साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित रामचंद्र गुहा 30 मार्च को अल्मोड़ा में थे, जहां उन्होंने उत्तराखण्ड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान में दसवां बी. डी. पाण्डेय स्मृति व्याख्यान दिया. गुहा के व्याख्यान का विषय था- 'दस कारण जो महात्मा गांधी को अपरिहार्य बनाते हैं.' इस साल गांधीजी की 150वीं जयन्ती भी मनाई जा रही है. गुहा ने करीब आधे घंटे का अपना रोचक व्याख्यान दिया और उसके बाद एक घंटे तक उपस्थित लोगों के सवालों का जवाब भी दिया. प्रस्तुत है कमल जोशी की रिपोर्ट। –सं.

गांधीजी के देहान्त को सात दशक से ज्यादा वक्त बीत जाने के बाद आज इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में उनके जीवन, उदाहरण और विचारों की प्रासंगिकता के जो कारण गुहा ने बताये उनमें पहला है—गांधीजी ने भारत तथा विश्व को अन्यायपूर्ण सत्ता का अहिंसक ढंग से विरोध करने के तरीके-सत्याग्रह से परिचित कराया. भारत के स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्र भारत में वनों के अंधाधुंध कटान, खनन, शराब इत्यादि की विनाशकारी नीतियों के विरोध में हुए अहिंसक, शांतिपूर्ण जनांदोलनों में भी इसका प्रभाव रहा है. अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग द्वारा तथा 1989 में पूर्वी यूरोप के देशों में भी सत्याग्रह का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया.

दूसरा कारण—देश, समाज व संस्कृति में जो बुराइयां थीं, वे उन्हें स्वीकार करते थे और जीवन-पर्यन्त सुधार के प्रयास करते रहे. गांधीजी कहते थे कि अगर देश में पुरुष महिलाओं का या तथाकथित उच्च जाति-वर्ण के लोग निम्न जाति-वर्ण के लोगों का शोषण कर रहे हैं, उन्हें परतंत्र बना कर रखा है तो ऐसी स्थिति में अंग्रेजों से आज़ादी कैसे मांग सकते हैं? गांधीजी अंध देश-भक्त नहीं थे.

तीसरा कारण—स्वयं को हिंदू मानते हुए भी गांधीजी ने धर्म के आधार पर नागरिकता का विरोध किया। उनकी दृष्टि में भारत केवल एक हिंदू राष्ट्र नहीं था, जैसे पाकिस्तान एक मुस्लिम राष्ट्र और इजराइल एक यहूदी राष्ट्र था. उनके बड़े व उदार दिल में अन्य धार्मिक विश्वासों को मानने वालों के लिए जगह थी. विभिन्न धर्मों के बीच भाईचारा बनाने के प्रयासों में वे जीवनभर लगे रहे और इसी प्रयास में अपना बलिदान दे दिया. इसीलिए भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य बन सका.

चौथा कारण—गांधीजी धार्मिक और भाषाई दृष्टि से कट्टर नहीं थे. गुजराती भाषा, संस्कृति वाले समाज में उनकी जड़ें बहुत गहरी थीं, लेकिन अन्य भाषाओं और संस्कृतियों के प्रति भी उनके मन में उतना ही प्रेम था. दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने 1903 में 'इंडियन ओपीनियन' नामक जो अखबार शुरू किया, वह चार भाषाओं- हिंदी, अंग्रेजी, तमिल और गुजराती में प्रकाशित होता था, क्योंकि वह प्रवासी भारतीय समाज के सभी वर्गों सहित वहां की सरकार तक अपने विचार पहुंचाना चाहते थे. यह संभवतः विश्व का पहला मल्टी-लिंगुअल साप्ताहिक समाचार-पत्र था.

पांचवा कारण—गांधीजी एक साथ देश-भक्त और अन्तर्राष्ट्रीयतावादी दोनों थे. वे भारत की प्राचीन सभ्यता की विरासत पर गर्व तो करते थे, लेकिन यह भी भलीभांति समझते थे कि बीसवीं सदी में कोई भी देश 'कुंए का मेढक' बन कर नहीं रह सकता. गांधीजी पर भारतीय तथा पाश्चात्य, दोनों प्रभाव रहे. वे तीन लोगों को गुरु मानते थे- गुजराती संत, लेखक व कवि रायचन्द भाई, गोपालकृष्ण गोखले, जो भारतीय थे लेकिन गुजराती नहीं, और लियो टॉल्स्टॉय जो रूस के थे. आप अपने क्षेत्र, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा से प्रेम करें, लेकिन साथ ही देश व विश्व के अन्य देशों से आ रही अच्छी बातें ग्रहण करके इसे और ज्यादा समृद्ध बना सकते हैं.

गुहा ने उक्त पांचों तर्कों के महत्व पर प्रकाश डाला, जिनके कारण भारत एक बहुदलीय लोकतंत्र बना, दलितों और महिलाओं को संविधान द्वारा समान अधिकार प्राप्त हुए और भारत का पाकिस्तान या श्रीलंका जैसा हश्र नहीं हुआ. गुहा के अनुसार इनके पीछे अकेले गांधीजी की भूमिका नहीं थी, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण योगदान उन्हीं का रहा. गुहा ने कहा कि गांधीजी की प्रासंगिकता साबित करने वाले अगले पांच कारण न सिर्फ भारत के लिए अपितु समूचे विश्व के लिए महत्वपूर्ण हैं.

छठा कारण—गांधीजी सबसे पहले के पर्यावरणवादियों में थे, जब दुनिया में पर्यावरण आंदोलन शुरू ही नहीं हुआ था, उन्होंने बेलगाम आर्थिक वृद्धि और मनुष्य के अति लालच को विश्व के लिए विनाशकारी मानते हुए चेतावनी दी। भावी पर्यावरणीय संकट का उन्हें पूर्वानुमान था. दिसम्बर 1928 में उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा कि भगवान न करे कि भारत औद्योगीकरण में पश्चिम का अनुसरण करे. एक छोटे से द्वीप, इंग्लैंड का आर्थिक साम्राज्यवाद विश्व को गुलामी में जकड़ सकता है तो 30 करोड़ की आबादी वाला देश यदि इसका अनुसरण करेगा तो विश्व का क्या हाल कर देगा.

सातवां कारण—गांधीजी में अपने विचारों व मान्यताओं को समय के साथ, नये तर्कों/प्रमाणों के प्रकाश में बदलने की क्षमता थी. भारत में जाति के आधार पर कर्म विभाजन

...शेष पृष्ठ 11 पर

एही ठैंयाँ झुलनी हेरानी हो रामा

-उमेश प्रसाद सिंह

उमेश प्रसाद सिंह शिक्षाविद हैं और शिक्षाविद होने से पहले एक शिक्षक हैं, लेकिन शिक्षक होने से पहले वे एक किसान हैं। स्वाभाविक ही उनके स्वर में किसान की और एक नागरिक की पीड़ा है। चूंकि वे शिक्षक भी हैं और शिक्षाविद भी तो उनकी पीड़ा में भी लालित्य है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार की लोकगीत की एक विधा है–चैता। देश और समाज आज जिन पीड़ाओं के सामने खड़ा है, उनकी सार्थक अभिव्यक्ति के लिए लेखक ने चैता लोकगीत की परम्परा को बिम्ब की तरह इस्तेमाल किया है। पढ़ें समसामयिक चिन्ताओं पर उमेश प्रसाद सिंह की यह ललित टिप्पणी। –सं.

चैता सुख के खो जाने का गान है। भारतीय जाति बड़ी कठकरेजी जाति है। इसका दिल बड़ा कोमल है। किन्तु कलेजा बड़ा कठिन है। कठोर नहीं है, कठिन है। कठोर वह होता है, जो दूसरों को दुख पहुँचाकर दुखी नहीं होता। कठिन कुछ दूसरे तरह का होता है। वह दुख सह लेता है मगर दुखी नहीं होता। दुर्बल जाति के लोग सुख के खो जाने के अवसर उपस्थित होने पर रोने लगते हैं। हमारी विरासत कुछ इस तरह की है कि सुख के खो जाने पर हमारे भीतर गान उठने लगता है। हम गाने लगते हैं। चैता गाने लगते हैं। सुख के विदा हो जाने की पीड़ा का गान चैता कहलाता है।

बसन्त के बीत जाने के बाद, बसन्त के उल्लास के विदा हो जाने के बाद उसकी उन्मद उदासी की त्रासद चुभन का एहसास चैता में मुखरित हो उठता है। चैता सुख की अदम्य उत्कण्ठा में उसके अभाव के कचोट का उद्वेलन है। बसन्त था। अभी-अभी था। यहीं था। अपने अगल-बगल था। आस-पास था। अपने में ही था, समाया हुआ। अपनी ही चेतना की आन्तरिकता में मोजरे हुए आम की मादक गन्ध की तरह इठलाता हुआ। मगर अब नहीं है। सबकुछ है, मगर वह नहीं है। बहुत कुछ नया-नया भी है, लेकिन वह नहीं है। वह नहीं है, मगर उसकी छाया हमें अब भी छू रही है। उसका न होना मन को मथ डालता है। टीस से भर देता है। बेचैन कर देता है। उसके न होने से जो है, वह सब पीड़ा पहुँचाने वाला बन गया है।

मैं जब अपने समय को देखता हूँ, वह बेचैन दिखाई पड़ता है। न जाने किस उधेड़बुन में उन्मन। बेहद हड़बड़ी में भागता हुआ न जाने क्या खो गया है कि हर छूँछी हाँड़ी में हड़बड़ाया हाथ डालता अकुलाया हुआ है। लगता है हमारे समय में हर आदमी का कुछ खो गया है। पता नहीं क्या खो गया है। मगर खो गया है जरूर। जो खो गया है, उसे ही हम ढूंढ रहे हैं। हर कहीं ढूंढ रहे हैं। मगर वह कहीं भी मिल नहीं पा रहा है। हमारा समूचा समय बेचैन है। बेहद बेचैन है। मुझे लगता है कि हमारे समूचे भारतीय समाज की कोई बहुत ही प्रिय और बहुत ही जरूरी चीज खो गई है।

हाँ, सच है। जरूर खो गई है। हमारे घरों में हमारा घर खो गया है। हमारे परिवारों में हमारा परिवार खो गया है। हमारे पड़ोस में हमारा पड़ोस खो गया है। यहाँ तक कि हम में हम ही खो गए है। बड़ा अजीब है। ऐसा क्यों है?

मैं बराबर सोचता हूँ। सोचता रहता हूँ। मुझे लगता है, हमारी समूची भारतीय जाति की अस्मिता ही खो गई है। हमारे पास बहुत कुछ है। हमने बहुत कुछ उपलब्ध किया है। फिर भी...।

हमें लगता है, भारतीय जाति की आधुनिक अस्मिता का निर्माण हमारे स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान सृजित मूल्यों से हुआ है। भारतीय जाति की आत्मिक अभीप्सा उन्हीं मूल्यों की जीवन में उपलब्धता की अभीप्सा है। हमारी मूल अभीप्सा प्यासी की प्यासी है। आजादी के बाद की सरकारें विकास के दावों की उद्घोषणा गला फाड़-फाड़कर करती आ रही हैं। आज भी कर रही हैं। हम कैसे कहें कि हमारी सरकार झूठ बोलती है। हम कैसे कहें कि हमारी सरकार सच बोलती है। नहीं, हमारी तो कुछ बोलते हुए बोलती ही बन्द हो जाती है। फिर सरकार के सामने हमारे कुछ भी बोलने का मतलब ही क्या है। जो कुछ भी हो मगर भारतीय जाति की बेचैनी कम होने का नाम नहीं ले रही है। हमने सरकारें बदल-बदल कर भी देखा है। हमारा हर बदलाव छूंछी हाँड़ी में हाथ डालने जैसा ही साबित हुआ है। जो खो गया है, वह कहीं नहीं मिलता। हाथ हर जगह जाता है।

हमारे सुहाग का चिह्न हमारी झुलनी खो गई है। सौभाग्य तो है, मगर सौभाग्य का चिह्न हो गया है। हमारे लोकतंत्र के सौभाग्य का चिह्न हमारी सुरक्षा, हमारा स्वास्थ्य, हमारी शिक्षा, हमारे हाथ में नहीं है। हमारे साथ में नहीं है। वह खो गई है। वह अमेरिका में नहीं, इंग्लैण्ड में नहीं, चीन में नहीं, पाकिस्तान में नहीं खोई है। यहीं खो गई है। यहीं अपने घर में ही हेरा गई है। वह इसी ठाँव कहीं गुम हो गई है।

अपनी सबसे प्रिय चीज, सबसे बहुमूल्य चीज अपनों के बीच ही खो गई है। सब तो अपने ही है। अपने ही प्रियजन है। किससे पूछें? कैसे पूछे? सास-ससुर से ननद-देवर से पूछने में संकोच होता है। सैंया से पूछते तो लज्जा ही दबोच लेती है। द्वार-आँगन, ढूंढते, कोठे-अटारी ढूंढते हिचक होती है। अपनी सेज पर ढूंढते तो जी एकदम लजा ही जाता है। समूची भारतीय जाति, समूची भारतीय जनता हलकान है, बेहद। हलकान तो है मगर लज्जित भी है। वह पूछते-पूछते, ढूँढते-ढूँढते लजा उठती है। तो भी क्या? लज्जा में भी बेचैनी कम कहाँ हो पाती है। तनिक भी कम नहीं होती। कम होने का नाम नहीं लेती है।

कहने वाले कहते हैं कि आँख फैलाकर देखो न। क्या रौनक है! क्या रंगीनी है! कैसा उजाला है! अब कहने वालों का क्या। कहना ही जिसका व्यापार है, कुछ भी कहे, कौन रोक सकता है। किस की जीभ, किस-किस की जीभ कौन पकड़े। फिर जिनको बोलकर ही मालामाल होना है, धन से, दौलत से, पद से, प्रतिष्ठा से, वे भला किसके रोके रुकने वाले हैं!

जो सब कुछ अपने लिए देख रहा है, भला उसे दूसरे का देखा क्या दिखेगा। नहीं दिखेगा। कभी नहीं दिखेगा। जो अपने सुख में अन्धा है, उसे अंधेरा नहीं दिखता। अभाग नहीं दिखता। खोया हुआ सौभाग्य, सौभाग्य का चिह्न नहीं दिखता। नहीं दिख सकता है। सावन के अन्धे को सब कुछ हरा-हरा ही दिखता है। अपने सुख में अन्धे हुए को सब कुछ भला-भला ही दिखता है।

मगर सबकुछ भला-भला नहीं है। भारतीय जन के लिए, भारतीय जनता के लिए सबकुछ भला-भला नहीं है। कुछ बुरा है, जो भले को भी शोभन नहीं होने देता। सुखद नहीं होने देता।

भारतीय जनता के सुहाग का चिह्न खो गया है। अपने ही घर-आँगन में, अपने ही कोठे-अटारी में, अपनी ही सेज में, अपनी ही श्रृंगार-सामग्री में कहीं खो गया है। वह कबसे हेर रही है। खोज रही है। ढूँढ रही है। ढूंढने में व्यग्र है। बेचैन है। विकल है। उसका कहीं पता नहीं चल पा रहा है।

हमारी विरासत खोये हुए बसन्त की पीड़ा को चैता में गाने की विरासत रही है। मगर अब तो हम अपनी विरासत से वंचित होकर वैश्विक जन होने का झुनझुना बजाने में लगे हैं। फिलहाल हम न गा पा रहे हैं, न तो रो ही पा रहे हैं। हम गाना भूल चुके हैं। रोना हमारे स्वभाव में कभी रहा ही नहीं है।

भारतीय जनता तो कबसे कह रही है,- खोज दो न, खोजवा दो न। हमारे सुहाग का चिह्न तो हमारे स्वाधीनता-संघर्ष के संकल्प ही हैं। सपने ही हैं। सब अपनों की तू-तू, मैं-मैं में खो गया है। अपनों में ही, अपनों के बीच ही हमारा अपनापन कहीं खो गया है।

सद्यः सुहागन के लिये झुलनी से बढ़कर कुछ भी नहीं है। वह है तो सबका अर्थ है। वह नहीं है, तो सब व्यर्थ है। उसे तो उसके होने पर ही सबकुछ भला लगता है। जनतंत्र में जनता को क्या चाहिए? हमें सबसे पहले हमारी सुरक्षा चाहिए, शिक्षा चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए, सम्मान चाहिए, पारस्परिकता चाहिए, पारिवारिकता चाहिए। हमें जीने के अवसर की सुलभता चाहिए। मगर यही नहीं है। यही तो नहीं है। यही खो गया है। यहीं कहीं खो गया है। किससे पूछें भला! कैसे पूछें भला!

कौन सुनेगा? कोई नहीं। सब मगन हैं, मस्त हैं अपनी धुन में। अपनी लगन में। अपनी खुशी में। उनकी खुशी देखकर पूछने से पहले ही जी लजा जाता है। बसन्त चला गया है। धूप तीखी होने लगी है। मन में बेचैनी भरी है। बेचैनी में चैता का बोल बज रहा है-

एही ठैंया झुलनी हेरानी हो, रामा,
कासो मैं पूछूँ।
सास से पूछूँ, ननदिया से पूछूँ,
सइयाँ से पूछत लजानी हो रामा.....।

जनतन्त्र लजा रहा है। जनता लजा रही है। चारों तरफ बाजा बज रहा है। बधावा बज रहा है। उत्सव की तैयारी चल रही है। जिसे सुनना है, सुन नहीं रहा है। किससे पूछें?

संसद में शोर है। विधानसभा में हंगामा मचा है। गांवसभा? नहीं। गांवसभा में कुछ भी पूछना मना है। ❑

समाचार-पत्र के दो मुख्य धर्म हैं–एक, समाज का चित्र खींचना; दो, उसे सदुपदेश देना। हमारा दूसरा कार्य लोक शिक्षण, हमारा सच्चा धर्म है। इसी के द्वारा हम देश की और जनता की सच्ची सेवा कर सकते हैं। यदि हममें योग्यता हो और हम सचमुच कुछ देश सेवा करना चाहते हों, तो हमें अपने पत्रों में सदा सर्व प्रकार से उच्च आदर्श को स्थान देना चाहिए। सदाचार को उत्तेजन देकर, कुरीतियों को दबाने का प्रयत्न करना चाहिए। पत्र बेचने के लोभ में अश्लील समाचारों को महत्त्व देकर तथा दुराचरणमूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णन करके हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे हैं, इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए। अपराधी एकाध पर अत्याचार कर दंड पाता है, हम सारे समाज की रुचि बिगाड़ कर आदर पाना चाहते हैं। विचार कीजिए, हम कितना बड़ा पाप कर रहे हैं। **–बाबूराव विष्णु पराड़कर**

(1925 में वृंदावन में प्रथम संपादक सम्मेलन के अध्यक्षीय उद्‌बोधन से)

...पृष्ठ 9 कर शेष

की व्यवस्था, अन्तर्जातीय विवाह, पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति इत्यादि के बारे में उन्होंने अपनी पुरानी मान्यताओं को बदला था.

आठवां कारण—गांधीजी ने अपने अनुयायियों में से नेहरू, सरदार पटेल, राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, कमला देवी चट्टोपाध्याय सहित अनेक महान नेतृत्वकर्ता (लीडर) तैयार किये, जिन्होंने आगे भारत की प्रगति में अमूल्य योगदान किया.

उन्होंने गांधीजी की वर्तमान में प्रासंगिकता का नवां कारण बताया—अपने विरोधियों के साथ संवाद तथा उनके विचारों व तर्कों को समझने की क्षमता. गांधीजी का कोई शत्रु नहीं था. गुहा के अनुसार उन्होंने डा. आंबेडकर और मि. जिन्ना के साथ क्रमशः बीस और तीस सालों तक निरंतर संवाद किया और उन्हें राजी करने की कोशिशें कीं.

दसवां कारण—गांधीजी का निजी व सार्वजनिक, दोनों जीवन पारदर्शी था. उन्होंने कुछ भी नहीं छिपाया. साथ ही कोई भी व्यक्ति उनके आश्रम में बेरोकटोक आ-जा सकता था और उनसे सवाल पूछ सकता था. आज भारी-भरकम सुरक्षा-तंत्र से घिरे रहने वाले हमारे राजनीतिज्ञों से तुलना करें तो पूर्णतया विरोधी स्थिति नज़र आती है.

उपस्थित लोगों के प्रश्नों के उत्तर देते हुए गुहा ने कहा कि गांधी के विरोध में आज शहीद भगत सिंह, सुभाष चन्द्र बोस और वीर सावरकर के तीन संप्रदाय हैं जिनमें समान बात यह है कि तीनों हिंसक विरोध में विश्वास करते हैं, जिसके गांधीजी विरोधी थे. हिंसक बनाम अहिंसक विरोध का यह मुद्दा वर्तमान में बहुत अहम् है.

गांधी बनाम आंबेडकर के मुद्दे पर गुहा ने कहा कि दोनों में परस्पर मतभेद था, लेकिन दोनों महान थे और दोनों ने असाधारण कार्य किये. एक अन्य जवाब में गुहा ने कहा कि गांधीजी मनुष्य हित को सर्वोपरि मामते थे और मनुष्यों व खेती को नुक़सान पहुंचाने वाले जानवरों, बंदरों, कुत्तों आदि को मारने का स्पष्ट तौर पर समर्थन करते थे. गाय के नाम पर मनुष्यों के साथ हिंसा को गांधीजी बिल्कुल ग़लत मानते थे. ❑

धारावाहिक

'बा' भारत वापसी

❑ गिरिराज किशोर

पहला गिरमिटिया जैसा चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। उनके बारे में उपलब्ध जानकारियां नहीं के बराबर हैं। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का अगला अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। –सं.

डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर देश के बड़े नेता थे। बापू और उनके बीच तनाव समाप्त हो गये थे। पूरा देश ही असहजता के दौर से निकलकर सहज हो गया था। डॉ. अम्बेडकर को बा कुछ दूर तक बाहर छोड़ने गईं। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर से कहा, 'आपके सहयोग से ही यह मामला निपट गया, आप संतुष्ट हैं?'

डॉ. अम्बेडकर ने कुछ सोचकर कहा, 'जो हम चाहते थे वह तो नहीं मिला, फिर भी सीटों की संख्या आशा से ज्यादा मिल गई।' वे आगे बढ़ गये और बा लौट गईं। रास्ते में जेल के इंस्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिजिन्स मि. डोयल ने बा को बधाई दी, 'आप ही हैं जिसने मि. गांधी को यरवदा पैक्ट पर हस्ताक्षर होने तक जीवित रखा।'

बा सोच रही थीं कि बापू इतने दिन उपवास रखने के लिए बधाई के पात्र हैं। हालांकि यह स्थिति अपने आप में कितनी भयावह थी। इसके पीछे वरदान भी था, जिसने पूरे परिवार को मिला दिया था। कस्तूरबा सजा का अंतिम सप्ताह यरवदा जेल के जनाने हिस्से में काट रही थीं। रामदास भी सजा के अंतिम दिनों में वहीं आ गया था। देवदास के चक्कर लगते ही रहते थे। हरि ही नहीं था। एक रोज मणिलाल दक्षिण अफ्रीका के सेब और जंजीराबाद के संतरे लेकर अचानक प्रकट हो गया था। यद्यपि बापू ने उसे मना कर दिया था पर आमरण अनशन का समाचार पढ़कर उससे रुका नहीं गया। वह पत्नी और चार साल की बेटी सीता के साथ आ गया। हरिलाल की याद आती थी। पर बा किसी से कहती नहीं थीं और भी कोई जिक्र नहीं करता था।

बा अपनी जेल से बापू के पास आती थीं। स्टोव पर खाना बनाती थीं। इसी कारण स्टोव उपलब्ध कराया गया था कि उपवास के बाद बापू को खाना ठीक मिलता रहे। उसी का फल था कि बापू जल्दी स्वस्थ हो गये। बा का वजन इस बीच न्यूनतम खाना खाने के कारण घट गया था। फिर से उसमें सुधार होने लगा था।

जेल से छूटने के बाद बा ने बापू से पूछा कि मुझे अपनी जिम्मेदारी पुनः संभाल लेनी चाहिए? बापू ने सहमति दे दी। 3 दिसंबर, 1932 को मद्रास में आयोजित छुआछूत विरोधी सम्मेलन में बा ने बापू का प्रतिनिधित्व किया था। वहां दूसरी महिलाओं के साथ बा ने हरिजनों को जागरूक करने के लिए उनकी बस्तियों का दौरा किया था। बीच में थोड़ा समय निकालकर, साबरमती आश्रम यह जानने के लिए गई थीं कि उनके जेल जाने के बाद वहां की स्थिति कैसी है, ठीक चल रहा है या नहीं। बापू को देखने यरवदा जेल भी गईं। उन्होंने दो दिन का उपवास किया था। उपवास के द्वारा उन्होंने उस नीति को बदलवा दिया था जो सत्याग्रहियों के द्वारा अछूतों द्वारा किये जाने वाले काम न करने के के बारे में थीं।

धर्मांध हिन्दुओं ने बा के हरिजनों के प्रति इस समर्थन का जमकर विरोध किया था। इस तरह के विरोध का सामना करने का यह बा का पहला अवसर था; बापू को तो रोज ही ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ता था। वास्तव में बा के सामने आने से हिन्दुओं की कट्टरता भड़क उठी थी। उनका यह भ्रम टूट गया था कि बा बापू के अछूतोद्धार के विरुद्ध हैं। उन्होंने दूधा भाई, दीना बहन और उनकी बेटी लक्ष्मी के आश्रम में प्रवेश के समय बा के द्वारा किये गये विरोध की बात सुनी थी। बा की यह भूमिका उसके विपरीत थी। इससे वे भड़क उठे थे।

1933 में बा को फिर बंद कर दिया गया। सरकार उन्हें चेतावनी दे चुकी थी कि वे सविनय आंदोलन से दूर रहें। इस संदर्भ में न्यूयार्क टाइम्स ने लिखा था कि कस्तूरबा को किन्हीं गोपनीय कारणों से बंद किया गया है। कारणों का खुलासा नहीं किया गया था। 1933 का वर्ष, बा और बापू की पकड़-धकड़ का वर्ष था। यह जीवनचर्या बन गई थी। मई में हरिजन के सवाल पर बापू इक्कीस दिन के अनशन पर बैठ गये थे। आमरण अनशन के बाद इतनी जल्दी फिर लंबे समय के लिए अनशन पर चले जाने से बा सन्न रह गयी थीं। बा से ज्यादा सरकार डर गई थी। महात्मा कहीं जेल में ही न मर जायें, यह सोचकर सरकार ने बा और बापू दोनों को छोड़ दिया।

1934 के आरंभ में बा फिर गिरफ्तार कर ली गईं। मई के महीने में उनकी रिहाई थी। बा को अप्रैल के अंत में सूचना मिली कि वह एक हफ्ते के अंदर तीन बार दादी बनी हैं। यह सब जैसे जेल से रिहाई की खुशी में हो रहा था। बा का एक पैर जेल में रहता था, पति और

परिवार से दूर। नवागत वंशज उस दुःख और विलगता के दंश को, अपने आगमन से दूर करने आये थे। शायद पुत्र-पौत्र स्त्री जीवन की उतनी ही बड़ी उपलब्धि होते हैं, जितनी बड़ी एक स्वतंत्रता सेनानी के लिए आजादी की आकांक्षा की पूर्ति की संभावना...। बा तो दोनों ही थीं। 1 अप्रैल को मणिलाल के घर पुत्र का जन्म हुआ, रामदास के घर 18 अप्रैल को ऊषा और देवदास की बेटी तारा जन्मे थे। बा ने हंसकर कहा था, 'ये बच्चे जेल-यात्राओं में व्यतीत जीवन-धन का सूद हैं।'

कस्तूरबा जेल से छूटीं तो, पर जीवन पर खतरे मंड़राने लगे। वह समझ रही थीं कि बापू का हरिजन-हित का काम कट्टरपंथियों के मन में सघन शत्रुता पैदा करता जा रहा है। पर डॉक्टर अम्बेडकर के साथ ऐसा नहीं था। एक तो वायसराय की काउन्सिल की सदस्यता, दूसरे कट्टरपंथी मन ही मन समझ रहे थे कि उनके जीवन का वह उद्देश्य है, पर गांधी ऐसा क्यों कर रहा है? कैसा महात्मा है? सारी शत्रुता उनके हिस्से में आ गई थी। एक दिन जब वह बापू के साथ जा रही थीं तब पहली बार समझ में आया कि उन लोगों के मन में बापू के प्रति कितनी गहरी घृणा है। जून 1934 के दिन, बा और बापू कई लोगों के साथ कार में पूना के म्युनिसपैलिटी हॉल जा रहे थे। वहां जनता उनका भाषण सुनने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। एकाएक एक देसी बम उनकी कार पर फेंका गया। निशाना चूक गया, फिर भी सात लोग घायल हो गये। प्रार्थना के बाद बापू ने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उनमें से किसी को गंभीर चोट नहीं आई। उसी रात को साते समय बा के मन में विचार आया कि जेल में जीवन कितना सुरक्षित और संभावनापूर्ण होता है। जीवन के सेवा-व्रत छोड़ देना क्या संभव है? शायद नहीं।

बापू का इरादा साबरमती आश्रम बंद कर देने का था। बा इस बात को जानती थीं। जब से बापू ने दांडी पदयात्रा की थी, तभी से आश्रम का भविष्य अनिश्चित हो गया था। उसका सरकार द्वारा अधिग्रहण लगभग तय था। अक्टूबर 1933 में सरकार द्वारा संभावित अधिग्रहण से आश्रम को बचाने के लिए, उसे हरिजन-कल्याण के लिए सोसाइटी बनाकर उसमें स्थानांतरित कर दिया गया था। आश्रम के अधिकतर सत्याग्रही ग्राम संबंधी योजनाओं में काम करने के लिए अलग-अलग जगहों पर चले गये थे। जो बचे थे, उन्हें दूसरे आश्रमों में भेजे जाने की बात थी।

इस तरह बा अनिकेत होने जा रही थीं। बापू स्वयं वर्धा से कुछ दूर सेवाग्राम में कुटिया बनाकर रहने चले गये थे। जब बा सेवाग्राम गईं तो समझ गईं कि बापू को ध्यान और एकांत चाहिए। कस्तूरबा अपने अनुभव से जान चुकी थीं कि अनिर्णय की स्थिति अपने में एक विकार है, उसका निदान केवल काम है। अगर बापू को उनकी आवश्यकता नहीं है तो उनके अपने बेटे तो हैं, नवागत पोते-पोतियां हैं, रिश्तेदार और मित्र हैं, वे इस वक्त काम आ सकते हैं। बा लगभग दो ढाई साल अपना जीवन स्वयं जीती रहीं। उनका जीवन घुमन्तू हो गया था।

बा अविराम यात्राएं करती रहीं। बापू के साथ बनारस जाकर हरिजन-महासभा को संबोधित किया। अहमदाबाद में रामदास बीमार था, वहां जाकर उसका इलाज कराया। अपनी पोती और रामदास की बेटी सुमित्रा की आंखों का इलाज कराने बम्बई गईं। देवदास किसी बड़े पद पर दिल्ली में था। उसकी बेटी तारा बीमार थी, उसे देखने वहां गईं। रामदास किसी छापेखाने में काम करने, परिवार को लेकर बम्बई गया तो बा उसकी गृहस्थी जमाने में मदद करने फिर बम्बई चली गईं। अपनी पोती, हरिलाल की सबसे छोटी बेटी मनु के साथ पुनः देवदास के यहां उन्हें दिल्ली जाना पड़ा। देवदास के साथ शिमला गईं। 1936 में अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन में हिस्सा लेने बापू के साथ नागपुर गईं। वहां बड़े बेटे हरिलाल से अनायास भेंट हो गई। उसने हंसी के तौर पर बताया कि बहुत से धर्म उस पर धर्म-परिवर्तन के लिए जोर डाल रहे हैं।

बा चौंकी, पूछा, 'तूने क्या सोचा?' वह हंस दिया।

कस्तूरबा हरि के साथ पहली भेंट को भुलाने का प्रयत्न कर रही थीं। अगले दौरे में एक विचित्र घटना घटी। कटनी के स्टेशन पर कुछ देर के लिए गाड़ी रुकी। बापू के दर्शन को भारी भीड़ थी। लोग महात्मा गांधी की जय बोल रहे थे। उस तुमुल ध्वनि के बीच एक अकेली आवाज सुनकर बा चौंक गईं। बा की जय कौन बोल रहा है? खिड़की से झांककर देखा। तब खिड़कियां खुली होती थीं। वह चकित रह गईं। मैले कुचैले और फटे कपड़ों में हरिलाल खड़ा था। बूढ़ा और बीमार लग रहा था। बा की आंखें नम हो आईं। सोचने लगीं, इस भीड़ को चीरकर यहां तक कैसे आया होगा। उसका एक हाथ ऊपर उठा हुआ था। उसमें एक संतरा था। वह खिड़की के पास आकर बोला, 'यह मेरे प्यार की निशानी है, सिर्फ तेरे लिए।'

बा ने ले लिया। कुछ कह नहीं पाईं। हरिलाल ने बापू से कहा, 'तुम इतने महान हो, तुम्हें जरूरत नहीं, तुम्हें बा ने महान बनाया।'

बापू कुछ कहते, इससे पहले ही गाड़ी रेंगने लगी। वह कुछ दूर तक साथ चला, जैसे बंधन में हो। फिर गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली। बा-बापू आगे निकल गये, वह वहीं खड़ा रह गया। भीड़ जय बोलती हुई लौट रही थी। हरिलाल कुछ देर खड़ा भीड़ को जाते देखता रहा। फिर माता कस्तूरबा की जय अकेले ही बोलता हुआ धीरे-धीरे चला गया। प्लेटफार्म और भी खाली हो गया।*...क्रमशः अगले अंक में*

अक़ीदत

ये भारत है। गाँधी यहीं पैदा हुए थे। यहाँ उनकी बड़ी इज्जत होती थी। उनको महात्मा कहते थे। चुनांचे मारकर उनको यहीं दफन कर दिया और समाधि बना दी। अगर गाँधीजी न मारे जाते तो पूरे हिंदुस्तान में अक़ीदतमंदों के लिए फूल चढ़ाने के लिए कोई जगह न थी।

यह मसला हमारे यानी पाकिस्तान वालों के लिए भी था। हमें क़ायदे आज़म का ममनून होना चाहिए कि वे खुद ही मर गए और सेफारती (पर्यटक) नुमाइन्दों को फूल चढ़ाने की एक जगह पैदा कर दी। वरना शायद हमें भी उनको मारना ही पड़ता।

(पाकिस्तान के मशहूर व्यंग्यकार इब्ने इंशा के व्यंग्य संग्रह उर्दू की आखिरी किताब से एक अंश)

आईना

की जानो बापू?

❑ फणीश्वरनाथ रेणु

बावन को गांधीजी जानते हैं, नेहरूजी जानते हैं और राजेन्द्रबाबू भी पहचानते हैं। प्रांत-भर के लीडर और राजनीतिक कार्यकर्ता जानते हैं। कैम्प जेल में सुपरिंटेंडेंट की बदनामी के खिलाफ कैदियों ने सामूहिक अनशन किया था। अंत तक बावनदास और चुन्नी गुसाईं ही टिके रहे थे! पच्चीस दिन का अनशन! रदरफोर्ड और आर्चर ने इन दोनों को 'देखने मांगा' था। गांधीजी की कठोर परीक्षा में, सत्य की परीक्षा में, सत्याग्रह की परीक्षा में, खरे उतरने वाले दो कुरूप और भद्दे इंसान!

'सुराजी' में नाम लिखाने के बाद सिर्फ दो बार बावन को माया ने अपने मोहजाल में फंसाने की कोशिश की थी लेकिन दोनों बार वह चेत गया था। मोहफांस में फंसते-फंसते वह बच गया था।...महात्मा जी की कृपा!

एक बार रामकिसुनबाबू ने सिमरबनी से मुठिया में वसूल हुआ चावल लाने को भेजा था—''चावल बेचकर रुपया ले आना।'' पांच रुपये तीन आने। लौटती बार सिमराहा स्टेशन बाजार में जगमोहन साह की दूकान पर वह दही-चूड़ा खाने गया था। जगमोहन साह जलेबियां छान रहा था और सहुआइन जलेबियों को रस में डुबो रही थी। बावनदास के मन में बहुत देर तक रस में डूबी जलेबियां चक्कर काटती रहीं।...पथराहा के फागूबाबू ने अपने बाप के श्राद्ध में कंगाल भोजन कराया था। एक युग हो गया, बावन ने फिर जलेबी नहीं चखी। आखिर बावनदास ने दही-चूड़ा पर दो आने की जलेबियां ले लीं।

लेकिन पेट में पहुंचने के बाद उसे अचानक ज्ञान हुआ। उसकी आंखों के आगे से माया का पर्दा उठ गया।...ये पैसे? मुठिया?...उसकी आंखों के सामने गांव की औरतों की तस्वीरें नाचने लगीं।...हांड़ी में चावल डालने के पहले, परम भक्ति और श्रद्धा से, एक मुट्ठी चावल गांधी बाबा के नाम पर निकालकर रख रही हैं। कूट-पीसकर जो मजदूरी मिली है, उसमें से एक मुट्ठी! भूखे बच्चों का पेट काटकर एक मुट्ठी! और बावन ने उस पैसे से अपनी जीभ का स्वाद मिटाया? व्रतभंग! तपभ्रष्ट!...दुहाई गांधी बाबा! छिमा करो! बावन फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी आंखों से आंसू झड़ रहे थे और वह कंठ में अंगुलियां डालकर कै करता जाता था!...सेत्ताराम! सेत्ताराम! दो दिनों का उपवास! आत्मशुद्धि, प्रायश्चित! रामकिसुनबाबू ने बहुत समझाया, आभारानी परोसी हुई थाली लेकर सामने बैठी रहीं, लेकिन बावन ने उपवास नहीं तोड़ा।...''मां, इस अपवित्तर मन को दंड देने से मत रोको। अशुद्ध आतमा मुझे बाबा की राह से डिगा देगी!''

माया का दूसरा फंदा...नमक कानून तोड़ने के समय श्रीमती तारावती देवी पटना से आई थीं। उनकी बोली में मानो जादू था। वह जहां जातीं, लोग उनके भाषण सुनने के लिए उमड़ पड़ते थे।...जवान औरत! सिर पर घूंघट नहीं। भगवती दुर्गा की तरह तेजी से जल-जल करती है, सरकार को पानी-पानी कर देती है। ''मुट्ठी-भर अंग्रेजों को हम नाच नचा देंगे। गोली, सूली और फांसी का डर नहीं।'' पुलिस-दारोगा डर से थर-थर कांपते हैं। जरूर उनमें भगवती का अंश है। सभा खत्म होने के बाद उनके निवास-स्थान पर भी भीड़ लग जाती थी। बहुत-सी बांझ-निपुत्तर औरतें चरण-धूलि लेने आती थीं। भगवती! उनके खाने-पीने और आराम करने के समय भी लोग जमे रहते थे। आखिर स्वयंसेवकों के पहरे का प्रबंध करना पड़ा।

एक दिन चंदनपट्टी आश्रम में, दोपहर को तारावती जी बिछावन पर आराम कर रही थीं। सामने के दरवाजे पर पर्दा पड़ा हुआ था और पर्दे के इस पार ड्यूटी पर बावनदास। फागुन की दोपहरी। आम की मंजरियों की ताजा सुवास लेकर बहती हुई हवा पर्दे को हिला-हिलाकर अंदर पहुंच जाती थी। तारावती जी की आंखें लग गईं। बावन ने हिलते-डुलते पर्दे की फाँक से यों ही जरा झांककर देखा था। उसका कलेजा धक कर उठा था, मानो किसी ने उसे जोर से पीछे की ओर धकेल दिया हो।...धीरे-धीरे पर्दे को हिलाने वाली फागुन की आवारा हवा ने बावन के दिल को भी हिलाना शुरू कर दिया। बावन ने एक बार चारों ओर देखा, फिर पर्दे के पास खिसक गया! अंदर झांककर देखा और तब देखता ही रह गया मंत्र-मुग्ध-सा!...पलंग पर अलसाई सोई जवान औरत! बिखरे हुए घुंघराले बाल, छाती पर से सरकी हुई साड़ी, खद्दर की खुली हुई अंगिया!...कोकटी खादी के बटन! बावन के पैर थरथराते हैं। वह आगे बढ़ना चाहता है।...वह जानता है! वह इस औरत के कपड़े को फाड़कर चित्थी-चित्थी कर देना चाहता है। वह अपने जबड़ों से पकड़कर उसे झकझोरेगा। वह मार डालेगा इस जवान गोरी औरत को। वह खून करेगा।...ऐं! सामने की खिड़की से कौन झांकता है? गांधी जी की तस्वीर! दीवार पर गांधीजी की तस्वीर! हाथ जोड़कर हंस रहे हैं बापू!...बाबा! धधकती हुई आग पर एक घड़ा पानी! बाबा, छिमा! छिमा! दो घड़े पानी! दुहाई बापू! पानी पानी, पानी! शीतल जल! ठंडक...!

बावन आंखें खोलता है। बापू बावन को भगवान बुलाते हैं। तब नाम लेकर कौन बुलाये, सभी को बावन में भगवान ही दिखते हैं, बावनावतार भगवान! रामकिसुनबाबू पानी की पट्टी दे रहे हैं। मां पंखा झल रही हैं। गांगुली जी चुपचाप खड़े हैं और घबराई हुई तारावती कह रही हैं, ''चीख सुनकर मेरी नींद खुली तो देखा यह धरती पर छटपटा रहा है।''

दूसरे दिन आभारानी एक गिलास टमाटर का रस देते हुए बोली थीं, ''भगवान, आज थेके तोमाय रोज एक गिलास ऐई रस, आर रात्रे दुध खेते हबे।'' लेकिन, बावन तो सात दिनों का उपवास-व्रत ले चुका था। आत्मशुद्धि, इन्द्रियशुद्धि, प्रायश्चित! बावन ने गांगुली के पास जाकर धीरे-धीरे सारी कहानी सुना दी—''गांगुली जी! आप मां को समझा दीजिए। मैं व्रत तोड़ नहीं सकता। कल माया ने...!'' गांगुली जी ने हंसते हुए आभारानी से कहा था, ''भगवानेर व्रत-भंग हउबा असम्भव। कारण गुरुतर। तबे आपनार भाग्य भालो जे बेचारा के सूरदासेर कथा मने पड़े नि, नईले एतखन आर भगवानेर चोख थाकतो ना'' (भगवान का व्रत-भंग होना असंभव है। आपका भाग्य अच्छा है कि उन्हें सूरदास की बात याद नहीं आई, वरना अब तक भगवान की आंखें नहीं रहतीं।)

आभारानी अवाक् होकर गांगुली जी की ओर देखती रह गई थीं, ''की जानो बापू?''

(उपन्यास 'मैला आंचल' का एक अंश) ❑

गांधी का राष्ट्रवाद

❑ रामनाथ 'सुमन'

राष्ट्रवाद की सीमा में आजकल व्यावहारिक रूप से जितनी बातों का समावेश होता है, गांधी का राष्ट्रवाद, देश-प्रेम और राजनीति स्पष्टतः उससे भिन्न है। यदि ऐसा न होता, तो आश्चर्य की बात होती। जो राष्ट्रवाद आज दुनिया के लिए घातक विष हो रहा है, जिसने मानव-हृदय के सत्य और सुंदर का गला घोंट दिया है और जो संसार की शांति के लिए एक महान् खतरा सिद्ध हो रहा है, जिसकी नींव में दुर्बल एवं पीड़ित मानवता की हड्डियां डाली गयी हैं, उस राष्ट्रवाद को गांधीजी कैसे प्रोत्साहित कर सकते थे?

पर जब हम गहराई में डूबकर देखते हैं तो हमें दो बातें बिजली की तरह स्पष्ट चमकती दिखायी देती हैं। एक तो यह कि उनका राष्ट्रवाद जीवन की साधना का एक अंग है। स्वतः कोई ध्येय नहीं, साधन मात्र है। दूसरी बात यह कि वह राजनीतिक की अपेक्षा नैतिक अधिक है। उसकी नींव भौतिक आकांक्षाओं पर आश्रित नहीं, वह नैतिक समृद्धि, जीवन की श्रेष्ठता एवं आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आश्रित है।

पश्चिम में तो राष्ट्रवाद का रूप इतना भयानक हो गया है कि वहां के श्रेष्ठ विचारक उसे एक दुर्गुण समझते हुए उसके विरुद्ध आवाज भी उठाने लगे हैं। पर महात्मा गांधी ने इस अस्त्र को बहुत शुद्ध रूप में हमारे सामने रखा है। वह जानते थे कि भारत के पास संसार को देने के लिए एक संदेश है। जहां भारत एक राष्ट्र है, एक देश है, वहां वह विश्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग भी तो है। इसलिए उसके गरीबों, दीन-दुखियों एवं पीड़ितों का उठाने का काम राष्ट्र सेवा और देश-सेवा के साथ ही विश्व-सेवा भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधीजी का राष्ट्रवाद वस्तुतः उनके विश्व-प्रेम का एक अंग है। उन्होंने कहा है कि ''मानवता के लिए मरने की आकांक्षा के पूर्व भारत को जीना सीखना होगा।'' इस वाक्य के भीतर उनके भारत-प्रेम का रूप झलकता है। वह विश्व को पंगु और पीड़ित भारत का दान करना नहीं चाहते थे, उसकी सेवा के लिए साहसी, पौरुषमय एवं आत्म-विश्वासी भारत की भेंट करना चाहते थे। एक बार उन्होंने कहा था—''यूरोप के चरणों पर लोटता हुआ भारत मानवता को क्या आशा दे सकता है? प्रबुद्ध और स्वतंत्र भारत के पास निश्चय ही पीड़ित और कराहते हुए विश्व को देने के लिए शांति एवं सदिच्छा का एक संदेश होगा।'' इन वाक्यों में विश्व-सेवा का भाव स्पष्टतर है। वह भारत को विश्व-सेवा का सबल साधन बनाना चाहते थे। आगे चलकर इसे उन्होंने और स्पष्ट भाषा में कहा है—''मेरा लक्ष्य विश्व-मैत्री है। हम विश्व-भ्रातृत्व के लिए जीना और मरना चाहते हैं।''

इतने पर भी प्रश्न किया जा सकता है कि गांधीजी विश्व-प्रेम को ऐसे जटिल राजनीतिक रूप में लेकर हमारे सामने क्यों आये? इसका सीधा उत्तर यह है कि इसमें दरिद्रनारायण की सेवा का विस्तृत क्षेत्र खुला हुआ था। इसमें अपने साथ दूसरों का भी उद्धार निहित था। गांधीजी ने आत्म-साधना का जो मार्ग अंगीकार किया उसमें प्रयोग की दृष्टि से यह सबसे अच्छा साधन था। सत्य और अहिंसा का साधन राजनीति के नाम पर संगठित हिंसा को कैसे देख सकता है? अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए हिंसा के इस व्यापक ताण्डव को बंद करना ही होगा। 1924 ई. में विवादों एवं दलबंदियों से दुःखी होकर उन्होंने कहा था—''यदि हम इस बात को याद रखें कि असहयोग की अपेक्षा अहिंसा अधिक महत्त्वपूर्ण है और अहिंसा के बिना असहयोग पाप है, तो मैं आजकल जिन विचारों को पल्लवित कर रहा हूं, वे सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट हो जायेंगे।'' यह एक साधक की वाणी है, राजनीतिज्ञ की नहीं। एक आध्यात्मिक साधक ही यह कहने का साहस कर सकता है कि असहयोग से अहिंसा अधिक महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः गांधी की फिलासफी, गांधी के विचार या दृष्टिकोण जानने के लिए ये शब्द मार्के के हैं। गांधी के असहयोग के मूल में स्वार्थ की अपेक्षा, जिससे असहयोग किया जाय उसे ठीक रास्ते पर लाने का भाव ही प्रधान है। यह भौतिक विजय का नहीं, शुद्धता की दिशा में, हृदय-परिवर्तन का मार्ग है और इसलिए अहिंसा की शर्त उसके लिए आवश्यक है। यहां विरोधी के दुर्गुण को दूर करने का भाव है, विरोधी को नष्ट करने का भाव नहीं है। इसके लिए साधन की शुद्धता एवं भावों की पवित्रता आवश्यक है और यह प्रेम से ही संभव है।

वर्तमान विदेशी शासनतंत्र की आलोचना करते हुए वे कहते हैं—''इस प्रणाली की सबसे बड़ी खासियत क्या है? यही कि यह परोपजीविनी है और राष्ट्रीय जीवन की गंदगी पर जीवित रहती है, उससे अपने लिए पोषण-सामग्री ग्रहण करती है। यह शासन-तंत्र हिंसा की नींव पर स्थित है। हिंसा उसके लिए परम आवश्यक है। उसके खिलाफ अहिंसात्मक शक्ति—सजीव, सक्रिय शक्ति उत्पन्न करना हमारे असहयोग का उद्देश्य था।'' इन मार्मिक शब्दों में उनके राष्ट्रवाद की तथा उसे अपनाकर जनता के सामने लाने की व्याख्या है। जब तक राष्ट्रीय जीवन गंदा है तभी तक यह शासन-प्रणाली चल सकती है। इसलिए राष्ट्रीय जीवन में जो गंदगी आ गयी है, जो बुराइयां भर गई हैं उन्हें दूर करने के लिए महात्मा गांधी ने असहयोग का अवलंबन किया था। विदेशी शासन हिंसा की नींव पर आधारित था, इसलिए उसे दूर करने के लिए व्यापक चेतना उत्पन्न करना आवश्यक था। यह चेतना अहिंसात्मक थी। इसके मूल में विरोधी का बुरा ताकना न था। उसे ठीक मार्ग पर लाना और विश्व-शांति के लिए सामंजस्य की स्थिति पैदा करना था। वह भारत को विश्व की प्रगति का, पीड़ित राष्ट्रों को उठाने का एक साधन बनाना चाहते थे।

दूसरी बात यह कि गांधीजी के राष्ट्रवाद में अहंकार का, दूसरी जातियों के सिर पर चढ़कर जबरदस्ती बैठने का, अपने राष्ट्रीय स्वार्थ के लिए दुर्बल देशों का यथेच्छ उपयोग करने का भाव ही नहीं है। जिस दिन ऐसा हुआ, उस दिन विश्व गांधीजी के तात्विक निर्देश की हत्या की चीत्कार सुनेगा। वह जानते थे कि आधुनिक सभ्यता ने मानव-मन में इतने उद्वेगमय प्रलोभन उत्पन्न कर दिये हैं कि शांति का कहीं नाम नहीं रह गया है। इसीलिए एक ओर वह उतना ही कमाने पर जोर देते हैं, जो हमारे जीवन को बनाये रखने के लिए अनिवार्यतः आवश्यक हो और दूसरी ओर बड़े-बड़े कल-कारखानों का विरोध करते हैं क्योंकि इनसे होड़ का भाव पैदा

होता है और इस होड़ की दौड़ में सात्विक सफलता न मिलने पर, तामसिक उपायों की शरण लेने की प्रवृत्ति पैदा होती है। उन्होंने प्रश्न उठाया था कि राष्ट्रीय नौकरियों में 500 रुपये मासिक से अधिक किसी का वेतन नहीं होना चाहिए। अपने अनुयायियों के लिए उन्होंने जो नियम बनाये उनमें अपरिग्रह और अस्तेय का बड़ा महत्त्व है। उनका अस्तेय भी बड़ा व्यापक था। वह कहते हैं—''यदि कोई आदमी कोई भी ऐसी चीज लेता है जिसकी उसे अनिवार्य आवश्यकता नहीं है तो यह चोरी है। इस सिद्धांत के मूल में यह सुंदर सत्य विराजमान है कि प्रकृति हमारी दैनिक जरूरतों के लिए काफी सामान एकत्र कर देती है। इसलिए हमें आवश्यक खाद्य-सामग्री, वस्त्र तथा अन्य सामग्री एकत्र नहीं करनी चाहिए।''

इस प्रकार गांधीजी के राष्ट्रवाद में एक ओर भारत के पीड़ित एवं दीन-दुखियों के उद्धार का भाव था और दूसरी ओर भारत को विश्व-भ्रातृत्व का, विश्व-सेवा का एक प्रबल साधन बनाने की आकांक्षा। तीसरी बात यह है कि प्रारंभ से अपने सिद्धांतों के साथ वह ऐसी शर्तें लगाते जा रहे थे, जिससे पश्चिम के ढंग की राष्ट्रीयता का भक्षक रूप हमें न देखना पड़े। उनका खादी आंदोलन, उनका आश्रम जीवन का प्रयोग, उनके आहार-विषयक प्रयोग, उनकी अहिंसा, उनका दरिद्र नारायण का प्रेम, उनका सात्विक वृत्तियों पर जोर डालना, उनकी सरल जीवन-प्रणाली आदि तामसिक मार्ग पर जाने से रोकने वाले उपाय हैं।

वह कहते हैं—''किसी देश में सुव्यवस्था का होना इस बात पर निर्भर नहीं है कि उसमें कितने लखपति-करोड़पति हैं, बल्कि सर्व-साधारण में गरीबी के अभाव पर निर्भर है।'' आगे वे कहते हैं—''असली अर्थ में सभ्यता आवश्यकताओं के बढ़ाने में नहीं, वरन् उनको स्वेच्छापूर्वक घटाने में है। क्योंकि इसी से असली सुख, संतोष, तृप्ति एवं सेवा की शक्ति में वृद्धि होती है।''

स्पष्ट है कि गांधीजी का राष्ट्रवाद उस राष्ट्रवाद से बिलकुल दूसरे प्रकार का है जो आज देश में बढ़ रहा है और विश्व के लिए एक खतरे की चीज बन गया है। वह तो वस्तुतः विश्व प्रेम का, विश्ववाद का, मानव जाति की सेवा का एक अंग है, साधन है। ❑

कर्म-विवेचना

मनुष्य की मुक्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं—भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग। शंकराचार्य को ज्ञान के पूर्व कर्मयोग मान्य है। कर्म के बिना चित्त-शुद्धि नहीं, चित्त-शुद्धि के बिना ज्ञान नहीं—यह उनका निश्चित मत है। विनोबा की उक्ति है, ''कर्मयोग ही जीवन है। अकर्मण्यता ही प्राण है। बिना कर्म के जीवन की इच्छा रखना, जीवन के साथ बेईमानी है। जब हम कर्म को टालते हैं तो जीवन भार रूप होता है, शाप रूप होता है।''

विनोबा कहते हैं—''मेरी यह पक्की राय है कि भावी जगत के धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक विचारों की बुनियाद शरीर-परिश्रम व्रत ही हो सकती है।'' अभी श्रम की दुनिया दो भागों में विभाजित है—शारीरिक श्रम एवं मानसिक श्रम। शारीरिक श्रम वाले मानसिक श्रम नहीं करते और मानसिक श्रम करने वाले शारीरिक श्रम नहीं करते। इसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि दोनों ही असंतुलन के शिकार हो गये हैं। एक कुपोषण ग्रस्त है तो दूसरे का शरीर अतिरिक्त भार ढोने को अभिशप्त है। इसलिए नये समाज की रचना के लिए शरीर-श्रम एक अनिवार्य तत्त्व है।

'कर्म-विवेचना' अलग-अलग संदर्भों में, अलग-अलग भूमिका के लोगों के सामने, अलग-अलग समय में, अलग-अलग स्थानों पर प्रकट किये गये विनोबाजी के कर्म संबंधी विचारों का यह संकलन है। सैकड़ों प्रवचनों से इसे संकलित-संपादित किया गया है।

सत्याग्रह

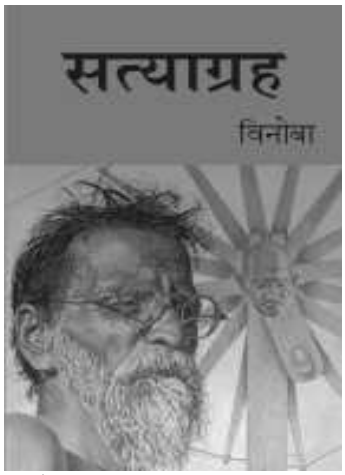

गांधीजी की दुनिया को एक अनमोल देन है सत्याग्रह। बीसवीं सदी में हुआ यह एक अनूठा आविष्कार है। गांधीजी ने वंचितों को अन्याय से लड़ने का एक बेजोड़ रास्ता दिखाया। वह न केवल भारत में ब्रिटिश राज हटाने में कामयाब हुआ, बल्कि सारी दुनिया के लिए प्रेरणास्रोत सिद्ध हुआ। वह न केवल अन्याय से लड़ने का रास्ता था, बल्कि जीवन की एक वैकल्पिक राह थी। सत्य की खोज करना और जो सत्य ध्यान में आये उसपर अमल करना; इतना ही नहीं, उस सत्य का आग्रह रखना और सारी जीवनचर्या इसके अनुरूप ढालना; उस सत्य की विजय के लिए संकल्पबद्ध होकर काम करना। यह एक नयी बात दुनिया के सामने आयी, जिसने मनुष्य जाति के विकास का अगला कदम स्पष्ट किया। गांधीजी के सत्याग्रह-विचार को विनोबा का योगदान विशिष्ट और मौलिक है। गांधीजी के जाने के बाद 'सत्याग्रह' शब्द गिरने लगा, तब विनोबा इसके खिलाफ लोगों को आगाह करते हुए सत्याग्रह का सही अर्थ और प्रक्रिया सामने रखते रहे। सत्याग्रह किसी के विरुद्ध नहीं, किसी के सामने होता है। इसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य को प्रवृत्त करना, उसका शोधन करना है। हिंसा की व्यर्थता सिद्ध हो चुकी है, इस स्थिति में अहिंसक मार्ग की खोज के बिना चारा नहीं है। विनोबा के सत्याग्रह-विचार का चिन्तन-मनन इस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा। इसी विश्वास से यह पुस्तिका पाठकों के सामने प्रस्तुत की जा रही है।

ये दोनों पुस्तकें सर्व सेवा संघ प्रकाशन ने प्रकाशित की है। ये हमारे सभी रेलवे बुक स्टालों पर उपलब्ध हैं। आप अपना क्रयादेश सीधे सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-221001 के पते पर भी भेज सकते हैं।

–प्रकाशक

बचपन बचाइए, झारखंड में 47.8% बच्चे कुपोषित

झारखंड में बच्चों की स्थिति भयावह है. यहां 47.8 फीसदी बच्चे कुपोषित हैं. अधिकतर के माता-पिता भी कुपोषित हैं. मनरेगा में किसी को 100 दिनों का रोजगार नहीं मिल रहा है। काम के अभाव में लोग पलायन कर जाते हैं. शुद्ध पेयजल का अभाव कुपोषण की सबसे बड़ी वजह है. बच्चे शासन की प्राथमिकता में भी नहीं हैं. ऐसे में बाल अधिकारों के संरक्षण में मीडिया की भूमिका अहम है. सेव द चिल्ड्रेन एवं वर्ल्ड विजन इंडिया की ओर से बाल अधिकारों से संबंधित मुद्दों पर चर्चा के लिए रांची के करमटोली स्थित प्रेस क्लब में मीडिया मीट के आयोजन में ये बातें कही गयीं।

मीडिया मीट में वरिष्ठ पत्रकार सुधीर पाल ने कहा कि झारखंड में खोजी पत्रकारिता व विश्वसनीय डाटा का अभाव है. बच्चों के मुद्दों पर शासन और सियासी पार्टियां भी गंभीर नहीं हैं. ऐसे में बच्चों के अधिकारों से जुड़े मसले को प्राथमिकता देकर मीडिया बचपन सुरक्षित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है. सेव द चिल्ड्रन के महाप्रबंधक (मीडिया संचार) देवेंद्र सिंह टॉक ने कहा कि बच्चों से जुड़ी खबरें करते समय माता-पिता या अभिभावक की सहमति व उपस्थिति जरूरी है. संवेदनशील होकर खबरें लिखी जायें और नकारात्मक की बजाय सकारात्मक खबरों को तरजीह दी जाये, तो सुरक्षित बचपन का माहौल तैयार किया जा सकता है. पिछले 100 साल से काम करने के बावजूद अभी भी काफी कुछ करने की गुंजाइश है. ऐसे में संजीदगी से बच्चों के लिए काम करना होगा.

सहायक कार्यक्रम प्रबंधक संजय कुमार कहते हैं कि झारखंड में सरकारी आंकड़े व जमीनी हकीकत में काफी अंतर है. आंकड़ों में सेहत में सुधार दिखता है, लेकिन गांवों में स्वास्थ्य की बदतर हालत हैरत में डाल देती है. जागरूकता का असर है कि लड़कियां अब बाल विवाह का विरोध कर रही हैं. वर्ल्ड विजन इंडिया के डॉ अनंगदेव सिंह कहते हैं कि हर दूसरा बच्चा बाल शोषण का शिकार है, लेकिन अधिकतर मामलों में वे बोल नहीं पाते. 44 फीसदी परिवार अपने बच्चों को लेकर सुरक्षित महसूस नहीं करते. सुरक्षित बचपन के लिए बच्चों के मुद्दे पर काफी सजग होने की जरूरत है.

अशोका फाउंडेशन फेलो बाल चैंपियन रूमी कुमारी ने कहा कि वह ट्रैफिकिंग की शिकार हुईं. अपना बाल विवाह रोकीं. आखिरकार आगे बढ़ने की जिद से आज बीए की पढ़ाई कर वह आत्मनिर्भर बन गयी हैं. वह रांची के बुढ़मू की हैं. गांव में गरीबी व अशिक्षा के कारण कई सामाजिक कुरीतियां पनप रही हैं. छह बहनों में अधिकतर का बाल विवाह हुआ. बड़ी बहन की शादी तो पांच साल में ही हो गयी, जब वह ठीक से मां भी नहीं बोल पाती होगी. गांव से गरीबी और अशिक्षा दूर होगी, तभी बाल विवाह, ट्रैफिकिंग, कुपोषण समेत अन्य समस्याएं खत्म होंगी. वह लगातार ग्रामीणों को बाल विवाह के खिलाफ जागरूक कर रही हैं.

झारखंड में कुपोषित बच्चों की संख्या अधिक है. 2011 की जनगणना के अनुसार, 5-18 वर्ष के करीब 9 लाख 95 हजार 771 बच्चे बाल मजदूरी करने पर मजबूर हैं. पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर 47.7 फीसदी है. **–पंचायतनामा से**

पचास पैसे प्रति किलो बिक रही किसान की प्याज

प्याज़ ने कई बार कइयों को रुलाया है. कभी राजनीतिक दल तो कभी किसान इसके झांसे से बच नहीं पाए. यहां तक कि एक बार प्याज़ की आसमान छूती क़ीमतों की वजह से तब की मौजूदा सरकार के हाथ से दिल्ली की सत्ता ही चली गयी थी.

जहां जहां प्याज़ उगाये जाते हैं, वहां किसानों के लिए कोई न कोई समस्या आँखें तरेर रही होती है. मगर जहां एक ओर प्याज़ उगाने वाले किसानों के लिए इसकी खेती जुए के बराबर है, इसके व्यापार से जुड़े लोगों के मुनाफ़े में कभी भी कमी नहीं आई.

मध्य प्रदेश के मंदसौर इलाके में या यूं कहा जाए कि राज्य के मालवा इलाके में लहसुन और प्याज़ ही मुख्य तौर पर उगाए जाते हैं. अगर आप महानगरों या बड़े शहरों में रहते हैं, तो अंदाज़ा लगाइए कि आप प्याज़ किस दर पर ख़रीद रहे हैं?

ज़ाहिर सी बात है कि इसकी क़ीमत 12 रुपये प्रति किलो से लेकर 50 रुपये प्रति किलो तक है. अब ज़रा दिल थाम लीजिये क्योंकि मंदसौर में प्याज़ 50 पैसे प्रति किलो के हिसाब से मिल रही है और इसका कोई ख़रीदार भी नहीं है. किसानों का किराया भी नहीं निकल पा रहा है।

कृषि मंडी से लेकर मंदसौर के खेतों तक प्याज़ का अम्बार लगा हुआ है लेकिन इसे कोई ख़रीद नहीं रहा है. जिन किसानों ने इसकी अच्छी पैदावार से बढ़िया कमाई की उम्मीद लगाई थी, वे अब दिवालिया होने के कगार पर हैं. कुछ किसानों ने अपने उगाए प्याज़ मंदसौर की सरकारी कृषि मंडी में भी पहुंचाए. मगर दाम नहीं मिलने की वजह से वे अपनी फ़सल वहीं डाल कर चले गए.

किसान कहते हैं कि प्याज़ की फ़सल मंडी तक लाने में 60 रुपये प्रति क्विंटल का किराया देना पड़ता है. अब पचास रुपये प्रति क्विंटल यानी 50 पैसे प्रति किलो भी ख़रीदने वाला कोई नहीं है. वापस लेकर जा नहीं सकते क्योंकि लाने में ही इतना पैसा लग गया है. अब एक दो दिन और देखेंगे. नहीं तो प्याज़ यहीं छोड़कर चले जायेंगे।

दीगांव माली के पूर्व सरपंच हरी वल्लभ शर्मा कहते हैं कि पिछले साल किसानों को लहसुन की खेती ने रुलाया था, इस बार बारी प्याज़ की है. राम निवास भी प्याज़ की खेती से ही जुड़े रहे हैं. वे बताते हैं कि खेतों में हर रोज़ 150 रुपये की दर से उन्होंने मजदूर भी रखे. इसके अलावा खाद और दूसरी चीज़ों पर भी काफी खर्च हुआ. मगर फ़सल पड़ी की पड़ी रह गयी. मंदसौर के ही एक गाँव के किसान भेरू लाल कहते हैं कि राज्य सरकार प्याज़ का कोई न्यूनतम समर्थन मूल्य किसानों को नहीं देती है. इस वजह से प्याज़ की खेती जुआ खेलने जैसी ही है.

उनका कहना था कि चाहे केंद्र की सरकार हो या फिर राज्य की, किसानों की बात सोचने वाला कोई नहीं है. चुनाव में भी लोग किसानों की बात करने से बचते रहे। इस बार मंदसौर और मालवा के इलाके में प्याज़ की खेती में हुआ नुकसान ही सबसे बड़ा मुद्दा था। **–बीबीसी**

लोक-विमर्श

आखिर न्याय है क्या चीज!

❑ प्रेम प्रकाश

अलवर गैंगरेप जैसी घटनाएं जब सिर पड़ जाती हैं तो सरकारें आश्वासन देने लगती हैं—पीड़ित को न्याय मिलेगा, हर हाल मे न्याय मिलेगा। दामिनी के साथ जब वीभत्स अत्याचार हुआ था तब भी तत्कालीन सरकार ऐसे ही आश्वासन देती थी कि पीड़ित और उसके परिवार को न्याय मिलेगा, अवश्य मिलेगा। देश में ही नहीं, दुनिया भर मे यही होता है। अपने सुरक्षित और अभेद्य किलों मे बैठकर दुनिया की निर्णायक कुर्सियों पर काबिज लोग न्याय न्याय का शोर मचाते हैं। लेकिन जब हम मानवता के पूरे इतिहास पर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि दरअसल न्याय जैसी कोई चीज तो होती ही नही है।यह तो अवधारणा ही एकदम बेजमीन है, सिरे से निर्मूल है। दुनिया के अबतक के ज्ञात इतिहास मे कभी कहीं किसी को न्याय मिला हो तो बताइये। न्याय तो बिलकुल अप्राकृतिक विचार समझ में आता है। प्रकृति भी केवल दंड ही देती है, न्याय कहाँ देती है! धर्म भी न्याय नही दे सकता। मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि न्याय दिया जा सकता है और दिया नही जाता। मैं ये कह रहा हूं कि न्याय संभव ही नही है। न्याय किसी को दिया ही नही जा सकता। यह केवल छल है, झूठ है। आप दीजिए न्याय। कैसे देंगे न्याय, अलवर की बलात्कार पीड़िता को या आसिफा को?

न्याय की अवधारणा और पूरा न्यायशास्त्र मुझे एकदम गल्प समझ में आता है। कोई अपराध हुआ, व्यवस्था ने अपराधी को पकड़ा और उसे दंडित कर दिया? ये न्याय कैसे है? वी वांट जस्टिस, वी वांट जस्टिस, जब हम ये नारे लगा रहे होते हैं तो हमे खुद ही कहाँ पता होता है कि हम क्या मांग रहे है! सरकारें जब डैमेज कन्ट्रोल की मुहिम में लगती हैं और न्याय होगा, न्याय होगा का आश्वासन दे रही होती हैं तो क्या उन्हे ये पता होता है कि क्या देने की बात कर रही हैं वे? मेरा यह सवाल पूरे न्यायशास्त्र को, पूरी न्याय व्यवस्था को, पूरी न्यायिक मशीनरी को, समूची न्यायिक अवधारणा को चुनौती देना चाहता है, न्याय की सम्पूर्ण अवधारणा को कसौटी पर रखना चाहता है। सदियों सदियों से दुनिया में ये झूठ बोला जा रहा है। मुट्ठी भर प्रभावशाली लोग दुनिया के करोड़ों अरबों मनुष्यों की आँखों में धूल झोंकते आ रहे हैं। और विडंबना ये कि सफेद झूठ का ये व्यापार आज इन्टरनेट युग तक जारी है। दुनिया भर में इसकी पढ़ाइयां होती हैं, वकीलों और जजों की पीढियाँ दर पीढ़ियाँ अपने कैरियर बनाती हैं।

क्या पढ़ाया जाता है उन्हें? झूठ बोलने की एक से एक, नित नूतन विधियां, सबूत मिटाने और झूठे सबूत गढ़ने के तरीके, शब्दों और योजनाओं का खेल, ये शब्द डाल दो तो ये धारा लग जायेगी, वो बात जोड़ दो तो जमानत नहीं हो पायेगी, ये कर दो तो बड़े से बड़ा अपराधी छूट जायेगा, वो कर दो तो कोई भी निर्दोष फंस जायेगा। और न्यायाधीश? न्याय व्यवस्था एक ऐसा रोबोट तैयार करती है जो न तो अपनी आँख से कुछ देख सकता है, न तो अपने कानों कुछ सुन सकता है और न ही अपने बुद्धि विवेक से कुछ सोच समझ सकता है। तरह तरह के झूठों और फरेबों से रचे सबूत और गवाहियाँ जो उसके सामने रखी जायेंगी, उन्हीं के आलोक से निकलता है हमारे आपके हित या अहित में एक चिर प्रतीक्षित फैसला, जिसे हम न्याय या अन्याय कहते है। कत्ल हुआ है तो फांसी दे दो, बलात्कार हुआ है तो उम्रकैद दे दो। मारपीट हुई तो जेल कर दो। इस प्रक्रिया में देखिये तो सही हुआ क्या। अपराधी को कम या ज्यादा दंडित ही तो किया। जिसका कत्ल हुआ, उसको क्या मिला ? उसके प्राण उसे वापस कर दिये क्या ? जिसका बलात्कार हुआ, उसे क्या मिला ? उसे अबलात्कृत कर दिया क्या ? सोच के देखिये, ये सवाल बहुत मौलिक और पैने हैं और हम सबके है।

जो अपराध हुआ, वह न हो, इसकी जिम्मेदारी व्यवस्था की है। अपराध न होने पाये, इसके लिए समाज ने कर्मचारी, अधिकारी नियुक्त कर रखे हैं, एक पूरा ढांचा बना रखा है, उसके लिए वेतन और सुविधाओं पर बहुत पैसा खर्च करता है समाज। समाज के हर हिस्से को, हर नागरिक को सुरक्षित रहने का अधिकार है। इतने के बावजूद यदि वही कोई अपराध का शिकार होता है तो यह उस सुरक्षा ढांचे की अकर्मण्यता हुई, वेतनभोगियों का दोष हुआ, लेकिन उनका तो कोई ट्रायल नहीं होता। उनपर कोई मुकदमा, उनको कोई सजा कभी हुई क्या? सिपाही, दारोगा, कप्तान, जिलाधिकारी, विधायक, सांसद, मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री ये सभी सीधे जिम्मेदार हैं अपराध के, क्योंकि संविधान सभी को भयमुक्त होकर ससम्मान जीवन की जीने देने की गारंटी देता है और ये सभी उसी संविधान की शपथ लेकर पद की जिम्मेदारियां और सुविधाएं पाते हैं। व्यवस्था अपराध करने वाले को दंडित करके कहती है, न्याय दिया। अपराध रोकने के जिम्मेदारों को छोड़ देती है और पीड़ित को क्या मिला, यह तो बात ही भूल जाती है। जाहिर है, यह सब चाहे कुछ भी हो पर न्याय तो नही है। न्याय तो ये हो कि हंसती खेलती आसिफा अभी अपने घोड़े के साथ कहीं से आये और कह दे कि माँ, मैं रास्ता भटक गयी थी। देखो मैं ठीक ठाक हूँ। मुझे कुछ नही हुआ। उन्नाव वाली लड़की के आंसुओं का हिसाब कर दो, उसे उसका पिता दे दो। उसकी अबतक हुई यंत्रणा का ताप हर लो, चलो मान लेंगे न्याय कर दिया। सासाराम की बच्ची फिर सासाराम को मिल जायेगी क्या? अलवर की बेटी का खोया हुआ सम्मान उसे लौटा सकोगे क्या? और वो दामिनी? देश के किस हास्पिटल ने नियोजन किया उसका? बढ़िया विद्यार्थी थी अबतक तो काफी तरक्की हो गयी होगी उसकी? कई प्रमोशन मिल गये होंगे? आप कहेंगे क्या अहमकों जैसी बातें करते हैं आप! तो आप ही बताइये न, आखिर आप किस चीज को न्याय मान के बैठे हैं? सरकार क्या कर देगी, क्या दे देगी इन पीड़ितों को कि जिससे इनको न्याय मिल जायेगा?

न्यायशास्त्र के जानकार अपनी स्पष्ट राय जरूर लिखें। एक विमर्श तो खड़ा हो। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

सर्वोदय विचार परीक्षाओं में गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र का श्रेष्ठ परिणाम

गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र जोधपुर द्वारा संचालित सर्वोदय विचार परिचय परीक्षा में 354 परीक्षार्थियों में से 330 उत्तीर्ण हुए, और परीक्षा परिणाम 93.22% रहा। सर्वोदय विचार प्रवेश परीक्षा में 657 में से 584 परीक्षार्थी उत्तीर्ण हुए, और परिणाम 88.88% रहा। इस केन्द्र द्वारा 28 शिक्षण संस्थाओं में परीक्षाएं ली गयीं। सदैव की भांति इस केन्द्र का परीक्षा परिणाम सर्वोत्तम रहा। उल्लेखनीय है कि इन परीक्षा परिणामों के लिए प्रेरक शिक्षकों एवं कार्यकर्ताओं को सम्मानित किया जायेगा।

राजस्थान स्तर पर वरीयतानुसार प्रवेश परीक्षा में डॉ. भीमराव अम्बेडकर आवासीय उ. मा. वि. मण्डोर के छात्र मालाराम का प्रथम स्थान व श्री छगनराज चौपासनी वाले रा. बा. उ. मा. वि. जालोरी गेट की ही छात्रा नेहा कंसारा का तीसरा स्थान रहा एवं परिचय परीक्षा में श्री ओंकारमल सोमानी वाणिज्य महाविद्यालय की विद्यार्थी वैशाली मेवाड़ा को राज्य स्तर पर प्रथम स्थान व महर्षि दधीचि महिला महाविद्यालय बासनी की विद्यार्थी भूमिका गोयल को चतुर्थ स्थान प्राप्त हुआ। अध्यक्ष आशा बोथरा, सचिव भावेन्द्र शरद जैन एवं कार्यकारिणी के सदस्यों ने सफल विद्यार्थियों को हार्दिक बधाई दी। विद्यार्थियों को वरीयतानुसार ग्रीष्मावकाश के बाद स्थानीय स्तर पर दीक्षांत समारोह आयोजित कर प्रमाण पत्र एवं नकद पुरस्कार एवं सद्साहित्य प्रदान कर सम्मानित किया जायेगा। **–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन**

तीन दिवसीय गांधी उत्सव का आयोजन

राजस्थान जनवादी शिक्षक संघ के तत्वाधान में राजस्थान के टोंक जिले के एक सुदूर गाँव आवां में तीन दिवसीय गांधी उत्सव का आयोजन किया गया। तीन दिवसीय गांधी उत्सव का मुख्य उद्देश्य गांधीजी के संदेश को जन-जन तक पहुँचाना है। 10 मई से 12 मई तक चले इस कार्यक्रम में चित्र प्रदर्शनी, गांधी साहित्य प्रदर्शनी तथा खादी प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। साथ ही साथ तीन दिनों तक गांधीजी पर आधारित फिल्मों का प्रदर्शन हुआ तथा बालकों और युवाओं के साथ अनेक रोचक कार्यक्रम रखे गए।

डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, वनस्थली विद्यापीठ ने गांधीजी पर बनाये अपने चित्रों की एकल प्रदर्शनी लगायी। 11 फीट लम्बी तथा 6 फीट चौड़ी गांधीजी की विश्व की सबसे विशाल पेंटिंग चित्र प्रदर्शनी में विशेष आकर्षण का केंद्र थी।

10 मई को कार्यक्रम के उद्घाटन के पश्चात व्याख्यान के दो सत्र रखे गए जिसमें डॉ अन्नपूर्णा शुक्ला और मुजीब आज़ाद ने अपने विचार रखे। इसके पश्चात बच्चों और ग्रामवासियों को लगे रहो मुन्ना भाई फ़िल्म दिखाई गयी। 11 मई को व्याख्यान माला के दो सत्र—*मजबूरी नहीं मज़बूती का नाम महात्मा गांधी,* नाटक : सामजिक क्रांति का एक हथियार रखे गए। 12 मई को व्याख्यान माला के दो सत्र गांधी का *अहिंसा दर्शन और गांधी* तथा *सर्वोदय* रखे गए जिसमें अंशुल शर्मा, विष्णु जायसवाल ने अपने विचार रखे। सत्र संचालन नवाब खान ने किया। इसके बाद बच्चों और युवाओं के साथ गांधी को जानें शीर्षक से प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम रखा गया। उसके बाद बच्चों ने गांधीजी पर अपने विचार लिखे। कार्यक्रम में सत्यनारायण, अक्षय, छीतर, रमेश साहू, गोविंद आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रही। **–अंशुल शर्मा**

विचार गोष्ठी सम्पन्न

28 मई 2019 को वाराणसी में एक विचार गोष्ठी का आयोजन हुआ. विषय था - भारत की राजनीति में दर्शन की भूमिका : स्वदेशी दर्शन परम्पराएं और मूल्य आधारित राजनीति.

स्वदेशी दर्शन परम्पराओं से हमारा अभिप्राय गाँधी, कबीर, रविदास, तथा इन जैसे संतों के दर्शन से रहा. विश्वविद्यालयों में या तो इन्हें पढाया नहीं जाता है, या फिर हिंदी, इतिहास, राजनीति शास्त्र जैसे विभागों में पढाया जाता है, दर्शन विभाग में नहीं. इसके चलते और यूरोपीय विचारों के प्रभाव के चलते पढ़े-लिखे लोग इन्हें दार्शनिकों के रूप में सहजता से नहीं देख पाते. जो वैचारिक स्थापनाएं राजनीति में प्रासंगिक हो सकती हैं उन्हें अधिकांश 18 वीं और 19 वीं सदी के यूरोप से लिया जाता है और अपने दार्शनिकों के विचार समाज और व्यक्ति स्तर पर ग्राह्य तो माने जाते हैं लेकिन राजनीति में उनकी भूमिका नहीं देखी जाती. हम राजनीतिक सन्दर्भों में सत्य, प्रेम, अहिंसा, न्याय, भाईचारा जैसे विषयों पर कम ही बात करते हैं. अब सत्याग्रह की बात भी सामाजिक संघर्षों से बाहर हो चली है. इन्हीं स्थितियों पर गौर करने के लिए और आवश्यक सुधार की दृष्टि से एक बहस शुरू करने के इरादे से यह चर्चा रखी गई थी। जो विचार उभर कर आया वह यह था कि हमें राजनीतिक बहस और क्रियाओं के लिए नए प्रस्थान बिंदु चाहिए. ऐसे प्रस्थान बिंदु जो दर्शन को लोकमन और सामान्य जीवन के इतने नज़दीक देखें कि दार्शनिक व्याख्याओं और राजनैतिक चर्चाओं के बीच अंतर मिटने लगें. लोगों ने कहा कि यह बड़ा प्रश्न है और किसी एक बैठक में ऐसे प्रस्थान बिंदु खोज लिए जायेंगे, नहीं हो पायेगा. इसके लिए ऐसी बैठकों का सिलसिला चलना चाहिए और नए-नए लोगों को विमर्श में जोड़ा जाना चाहिए.

कार्यक्रम में अमरनाथ भाई, योगेन्द्र नारायण शर्मा, मो. आरिफ, मिथिलेश दुबे, रामजनम, फ़ज़लुर्रहमान अंसारी, प्रेमलता सिंह, चित्रा सहस्त्रबुद्धे, लक्ष्मण प्रसाद, गोरखनाथ, अरुण कुमार और सुनील सहस्त्रबुद्धे आदि ने भाग लिया। **–मिथिलेश दुबे**

सजीव खेती पर प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन

सजीव खेती पर एक दिन के प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन तमिलनाडु सर्वोदय मंडल द्वारा 25 मई को किया गया। मदुरै गांधी निधि के हॉल में आयोजित इस प्रशिक्षण कार्यक्रम मे मदुरै के आसपास के चार जिलों के चालीस किसानों ने भाग लिया।

तमिलनाडु सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष के एम नटराजन द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में सजीव कृषि विशेषज्ञ पामायन ने किसानों को सजीव खेती का प्रशिक्षण दिया। तमिलनाडु सर्वोदय मंडल के मंत्री एसटी राजेंद्रन ने कार्यक्रम में प्रतिभागी प्रशिक्षक व किसानों के प्रति धन्यवाद ज्ञापन किया।

उल्लेखनीय है कि तमिलनाडु सर्वोदय मंडल ने 2015 में मदुरै गांधी संग्रहालय में सुभाष पालेकर की ज़ीरो बजट खेती की अवधारणा पर चार दिनों का एक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया था। यह एक दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम उसी चार दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का फॉलो अप था।

- के एम नटराजन

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविता

हांका

हांका लगता रहा
सारी-सारी रात जागते रहे लोग
भेड़िया आया भेड़िया आया
भेड़िया नहीं आया
निराश हुई नई पीढ़ी
पहली बार देखती भेड़िये को अपनी आंखों
पुचकारती
सराहती
ढेला मारती
दौड़ाती
हू हू करती
मगर तमाशा न हुआ
बटोर हुई
खैनी-पान
नींद खराब
भेड़िया आया ही नहीं!
हवा बांधते रहे सयाने
उन्हें पता है कि भेड़िये ने अबतक गुस्से में
तहस नहस किये होंगे कुछ खेत
तमतमाया होगा
उछला कूदा दांव लगाया होगा चुपचाप
कि हांका थमे और वह गांव में घुसे
जानते हैं बुजुर्ग कि माहौल पहचानते हैं भेड़िये
डरते हैं मशालों से
जब जब हांकों में ढील हुई है
गांव की सीवान लांघी है भेड़िये ने
आया था इसके पहले एकबार
मुलायम रोएंदार चेहरे पर
स्त्रियोचित लावण्य लिये
कविताएं लिखीं थीं तब
आज के हांके में शामिल बहुतों ने
भेड़िये की रक्ताच्छादित आंखें देख
रोमांचित हुए थे
आदमी हो तो भेड़िये जैसा मर्द
एक के पीछे पूरा गांव
फिर भी बंदा दे गया दांव!
उस दिन मुरदार पड़े इस मुहावरे पर
धार चढ़ी थी
भेड़िया आया भेड़िया आया
अबकी सचेत रहे लोग
हांका लगता रहा सारी रात
पर भेड़िया नहीं आया
भेड़िये रोज रोज नहीं आते
मुहावरे का गलत होना ही
शायद सच होना है
भेड़िया नहीं आया तो बस इसलिए
कि हांका लगता रहा
पाठकों।
कवि ने इस कविता में
कुछ छिपा लिया है
कहीं ऐसा तो नहीं कि भेड़िये ने गांव और
गांव वालों के हांका लगाने का
गहरा अध्ययन विश्लेषण किया हो
मशालों के जलने बुझने के आंकड़े
इकट्ठा किये हों
और पहले ही छिप कर घुस आया हो गांव में
किसी देवीथान
या खंडहर के पीछे
या किसी बाऊ साहब के खंझासिया आहाते में
कि हांका लगा कर थके लोग सोएं
तो वह नमूदार हो
भेड़िये अब खेतों में नहीं छिपा करते

ठेस

विचारधारा की ठेस खाए मित्रों।
भूलो मत
कभी विचारधारा की इसी नदी में
तैरे थे तुम
छपकोइयां मारी थीं
बाहों की मछलियां तैराई थीं
तरोताजा हुए
मल-मूत्र उत्सर्जित किये
लगातार सूखती हुई मां को
महादेव बनाने में तुम्हारा
कितना हाथ रहा मित्रों?
पूजा निज विचार-शिलाओं को
ठेस उसी से खाई
विश्वास की ठेस भीतर तक
करकती है न!
मित्रों, लाल हो आई चोट को
हौल-हौले रगड़ो
कि नीला न पड़ जाये
खून का थक्का बनना ठीक नहीं
विचारों की गुलठी न बने
उन्हें रगड़ो और दर्द को काफूर समझ
आगे बढ़ो
कोई ठोकर जिन्दगी
नहीं रोक सकती

–देवेन्द्र आर्य

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार।